सर्वोदय पुस्तकमाला, पुष्प–५

समाधिमरणस्वरूप

रचनाकार
महापुराणकार पं० दौलतरामजी

सम्पादन
भंवरलाल पोल्याका

प्रकाशक
जैनविद्या संस्थान
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी
राजस्थान

☐ प्रकाशक

जैनविद्या संस्थान
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी
श्रीमहावीरजी - 322220 (राज०)

☐ प्राप्ति स्थान

1. जैनविद्या संस्थान, श्रीमहावीरजी
2. अपभ्रंश साहित्य अकादमी
   दिगम्बर जैन नसियां भट्टारकजी
   सवाई रामसिंह सड़क
   जयपुर - 302 004

☐ प्रथमबार—1000
मार्च, 1991

☐ मूल्य : 7/–

☐ मुद्रक

कुशल प्रिण्टर्स
गोधों का रास्ता, किशनपोल बाजार
जयपुर - 302 003 फोन : 76052

प्रकाशकीय

'कालो हि दुरतिक्रम:'—काल यानि मृत्यु का अतिक्रमण/उल्लंघन सम्भव नहीं। शरीर का नाश निश्चित है, स्वाभाविक है क्योंकि 'शीर्यते इति शरीरम्'। मानव ने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर नित नये आयाम स्थापित किये हैं परन्तु वह मृत्यु को परास्त नहीं कर सका, मृत्यु आज भी विजयगर्व से अपना मस्तक ऊंचा किये खड़ी है। इसीलिए ज्ञानी पुरुष मृत्यु को टालने की कोशिश में समय और शक्ति का अपव्यय नहीं करते अपितु उसको संवारने/उजागर करने और सहज बनाने का प्रयत्न करते हैं।

मरने से मफर[1] नहीं है जब ए अकबर।
बेहतर यही है कि खुशी से मरना सीखो।।

मृत्यु एक घटनामात्र न रहे अपितु महोत्सव के रूप में उसका वरण किया जा सके इस हेतु सन्तों और महात्माओं ने संसार के वास्तविक स्वरूप को समझाते हुए कषाय और वासना को कम करने का सदुपदेश दिया है। कषाय और वासना, जीवन और मृत्यु दोनों को बिगाड़ते हैं। रागद्वेष, मोह-ममता रूपी शेवाल के जालयुक्त पानी में फंसे हुए मानव के लिए संसार-प्रवाह से तिरना अशक्य होता है इसलिए मृत्यु से पहले ही इन्हें दूर करने का मार्ग सुझाया जाता है।

बड़ी विडम्बना है कि हम विपरीत मान्यताओं में जी रहे हैं। हम शरीर, कुटुम्ब, परिवार व भौतिक परिग्रह के मिथ्या-ममत्व में जकड़े हैं, जबकि इनका साथ शाश्वत नहीं है, अल्प समय तक का ही है।

मृत्यु एक परीक्षा है। इसमें सफल होने के लिए पहले से ही तैयारी करनी होगी। प्रस्तुत कृति मृत्यु को महोत्सव में परिणत करने की प्रक्रिया सिखाती है। मानव अन्त समय में संयत रह सके इसकी कामना सभी धर्म और सम्प्रदायवाले अपने-अपने ढंग से करते हैं। एक मुस्लिम शायर दुआ करता है—

कुछ रहे न रहे पर यह दुआ है कि अमीर।
नजा[2] के वक्त सलामत मेरा ईमान रहे।।

---

१. बचाव, विकल्प

२. मुक्ति-छुटकारा = मौत

प्रस्तुत रचना यद्यपि साधर्मी भाई रायमल्लजी के ज्ञानानन्द श्रावकाचार में प्रकाशित हो चुकी है किन्तु इसके रचयिता के विषय में विवाद रहा है। भाषा की दृष्टि से इस रचना का बहुत महत्व है। आज से अर्द्धशती पूर्व तक हमारे यहाँ बातचीत में प्रयुक्त होनेवाली लोकभाषा में ही यह लिखी गई है। मूल रचना को सरलता से समझने हेतु सम्पादक ने शब्दार्थिका (Glossory) संलग्न की है जिससे पाठकों को उसका हार्द समझने में सुविधा हो। साथ में हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है।

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी द्वारा संचालित जैन-विद्या संस्थान जैन धर्म, दर्शन और साहित्य के संरक्षण, संवर्धन के साथ उसके प्रचार–प्रसार के लिए प्रयत्नरत है। संस्थान द्वारा 'सर्वोदय पुस्तकमाला' के नाम से जनसामान्य के लाभार्थ जैनधर्म व दर्शन के सिद्धान्तों पर सरल व सुरुचिपूर्ण शैली में पुस्तकें प्रकाशित करने की योजना संचालित है। प्रस्तुत पुस्तक उसी पुस्तकमाला का पाँचवा पुष्प है।

इस रचना को प्रकाशित करने की प्रेरणा हमें श्री रोशनलालजी जैन, बुकसेलर से प्राप्त हुई, हम उनके आभारी हैं। इसका सम्पादन संस्थान में कार्यरत विद्वान् पण्डित भंवरलालजी पोल्याका, जैनदर्शनाचार्य, साहित्यशास्त्री ने किया है। इसके रचयिता के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डालने हेतु पोल्याकाजी ने बहुत परिश्रम किया है। पोल्याकाजी समाज के जाने-माने, लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् हैं, आपके कुशल सम्पादकत्व में अनेक पुस्तकें पत्र/पत्रिकाएं व स्मारिकाएं प्रकाशित हैं। इसके सरल/सुन्दर सम्पादन हेतु श्री पोल्याकाजी धन्यवादार्ह है। इस रचना के हिन्दी अनुवाद में सुश्री प्रीति जैन (अपभ्रंश डिप्लोमा) एवं सुश्री माया शर्मा (अपभ्रंश डिप्लोमा) ने सहयोग प्रदान किया है, एतदर्थ वे भी धन्यवादार्ह हैं।

मुद्रण हेतु **कुशल प्रिन्टर्स** के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित है।

जयपुर
महावीर जयन्ती
चैत्र शुक्ला १३, वि. नि. सं. २५१७
२८.३.९१

ज्ञानचन्द्र खिन्दूका
संयोजक
जैनविद्या संस्थान समिति
श्रीमहावीरजी

आद्य-कथ्य

भारत में जितने भी आस्तिक दर्शन हैं चाहे वे ईश्वरवादी हों अथवा अनीश्वरवादी इस विषय पर एकमत हैं कि जिसका अन्त-समय ईश्वर-आराधन या आत्मचिन्तन में व्यतीत होता है उसको परलोक में सद्गति अवश्य प्राप्त होती है। जैन पुराणों के अनुसार जीवंधर ने मरणासन्न कुत्ते को तथा भगवान् पार्श्वनाथ ने सर्पयुगल को णमोकार मंत्र सुनाया था जिसके प्रभाव से उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हुई थी। इसीलिए "अन्त भला सो भला" की उक्ति आज भी जनता में प्रचलित है किन्तु इसे राजमार्ग नहीं कहा जा सकता। यह तो केवल धूल में लट्ठ लगना मात्र है। भगवती आराधना की गाथा 24 में सतत सावधान रहने का उपदेश देते हुए इस सम्बन्ध में एक बड़ा अच्छा उदाहरण दिया है। ग्रंथकार से किसी जिज्ञासु ने प्रश्न किया—जब शास्त्रों में ऐसे कई उदाहरण हैं कि केवल अन्त समय में ही णमोकार मंत्र को सुनने या उसका उच्चारणमात्र करने से स्वर्गादि सुख की प्राप्ति हो जाती है तो जीवनभर उसके अभ्यास की क्या आवश्यकता है ? उत्तर मिला—एक अंधा व्यक्ति पेड़ के तने से टकरा गया और उसे दिखाई देने लगा। साथ ही पेड़ के नीचे रखा हुआ रत्न भी उसे प्राप्त हो गया। यह संयोगमात्र था। इसका अर्थ कदापि यह नहीं है कि प्रत्येक अंधे व्यक्ति को पेड़ के तने से सिर टकराने पर दिखाई देने लगेगा और उसे रत्न की प्राप्ति भी हो जायगी। अतः "अन्त भला सो भला" इसके लिए भी निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है। इसलाम में नमाज, वैदिक धर्म में संध्या तथा जैनदर्शन में सामायिक इसी दिशा में अग्रसर होने के प्रयत्न हैं।

कला में निष्णात होने के लिए प्रतिभा और सतत अभ्यास की आवश्यकता होती है। इन दोनों के संयोग से ही कलाकार सफलता की सीढ़ियां चढ़ सकता है। जीवन भी एक कला है जिसकी चरम सफलता है अवश्यंभावी मृत्यु का हंसते-हंसते वरण करना। जिस प्रकार नये वस्त्रों की प्राप्ति की आशा और प्रसन्नता में मनुष्य जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों का प्रसन्नतापूर्वक त्याग कर देता है वैसे ही ज्ञानी, समझदार पुरुष

समताभावपूर्वक बिना किसी कष्ट अथवा खेद के मृत्यु का वरण करता है। यही सच्चा समाधिमरण है।

मरण समय अज्ञात और अनिश्चित होता है। कोई नहीं कह सकता कि कब यम का कठोर हाथ गर्दन दबोच ले। अतः जीवन की वास्तविकता से अभिज्ञ प्राणी प्रतिक्षण धर्म की आराधना में लीन रहता है, वह अपना अशेष जीवन धर्ममय होकर यापन करता है। यह जीवन की आदर्श स्थिति है जो साधु जीवन में ही सम्भव है। गृहस्थावस्था में तो प्राणी पापपङ्क में कमोबेश सदा ही सना रहता है। जीवन की इस अनिश्चित अवस्था में कुछ ऐसे अवसर आते हैं जिनसे मृत्यु का निश्चित समय तो नहीं किन्तु उसके समीप होने का आभास अवश्य हो जाता है। ऐसे अवसर पर मृत्यु के स्वागत हेतु सन्नद्ध होने का, सल्लेखना धारण करने का उपदेश शास्त्रकारों ने दिया है। सभी आचार्यों ने प्रतिपादित किया है :–

1. ऐसे उपसर्ग, दुर्भिक्ष, वृद्धावस्था अथवा रोग जिसका सहायता, चिकित्सा आदि से कोई प्रतीकार नहीं हो सकता हो, की अवस्था में धर्म के लिए शरीर का त्याग करना अर्थात् सल्लेखना धारण करनी चाहिए।

2. सल्लेखना धारण करने से पूर्व शुद्ध मन से स्वजनों एवं परिजनों से राग द्वेष के भाव हटाकर उनसे क्षमायाचना करना और उनके प्रति क्षमाभाव धारण करना और सब प्रकार के परिग्रहों से ममत्व हटाना आवश्यक है।

"सल्लेखना" की परिभाषा है—सम्यक् कायकषायलेखना अर्थात् शरीर कषाय दोनों को अच्छी तरह से निश्चित प्रक्रिया के अनुसार कृश करना, घटाना।

सल्लेखना, संन्यास, समाधि, अनशन, निरुपाधि, पंडितमरण, वीरियमरण ये सब सल्लेखना के ही अपर नाम हैं।

—दौलतराम क्रियाकोष: चौपाई 85–86

राजवार्तिक 6/1/12/505/27 के अनुसार "युनैः समाधिवचनस्य योगः समाधिः ध्यानमित्यर्थान्तरम्" समाधि का ही अपर नाम ध्यान है।

समाधि धारण करनेवाले को जैन परम्परा में साधक, क्षपक, श्रयार्थी, संन्यस्त आदि नामों से अभिहित किया जाता है।

वैदिक परम्परा में भी योग अथवा समाधि ग्रहण करने का विधान है। महर्षि पतञ्जल ने अपने योगदर्शन में बताया है :—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ 2 ॥
तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ 3 ॥

टीका—योगी चेतना से सम्बद्ध होता है। वह श्रद्धा, प्रज्ञा, निष्ठा द्वारा चेतन की उत्कृष्ट उपलब्धियां अर्जित करता है। एतदर्थ उसे आत्मशोधन, संयम, तप का आश्रय लेना पड़ता है।

—पातञ्जल योगदर्शन : समाधिपाद 1, सूत्र 2–3 तथा उनकी टीका।

इस प्रकार जैन और वैदिक दोनों ही दर्शनों में सल्लेखना, समाधि अथवा योग का अर्थ आत्मतत्व की प्राप्ति का प्रयत्न है। गृहस्थावस्था में सल्लेखना का फल सद्गति की प्राप्ति है क्योंकि इस अवस्था में मुक्ति नहीं होती। मुनि अवस्था में दोनों में से कोई एक हो सकती है। पंचम और षष्ठ काल में तो गृहस्थ और साधु दोनों के वह प्रयत्नरूप ही होगी क्योंकि इन कालों में इस क्षेत्र से मुक्ति नहीं होती ऐसा आगमसिद्ध है।

सल्लेखनाधारी साधक अपने कर्तव्यकर्म से डिगे नहीं एतदर्थ उसे सम्हालने, सम्बोधने तथा उसकी भलीप्रकार वैयावृत्य करने की आवश्यकता का दायित्व जिन पर होता है वे निर्मापक कहलाते हैं।

1. सल्लेखना आत्मा में वैराग्य भाव के उत्पन्न होने पर पूर्ण चेतन अवस्था में ही स्वेच्छापूर्वक धारण की जा सकती है। क्षपक की अचेतन अवस्था में अथवा जोर जबर्दस्ती से धारण कराई गई सल्लेखना कार्यकारी नहीं होती।
2. धर्म के अतिरिक्त अन्य उद्देश्य से शरीर त्याग सल्लेखना नहीं कहलाती।
3. राग, द्वेष, क्रोध, लोभ अथवा ख्याति, लाभ, पूजा की कामना आदि से शरीरत्याग सल्लेखना न होकर आत्मघात ही होगा। वैराग्यभाव से आत्म-कल्याण के अर्थ धारण की गई सल्लेखना किसी भी दृष्टि अथवा तर्क से आत्म-घात नहीं हो सकती।

समाधिमरण अथवा सल्लेखना धारण करने के इच्छुक प्राणी में निम्न योग्यता एवं जानकारी का होना आवश्यक है :—

1. गृहस्थ जीवन में एतदर्थ सतत अभ्यास और प्रयत्न ।

2. धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान की विधि और उनका स्वरूप । वर्तमान काल में विशेषत: धर्मध्यान से सम्बन्धित पूर्ण जानकारी ।

3. आर्त्त और रौद्रध्यान, ध्यान की परिभाषा में होते हुए भी बिना प्रयत्न ही होनेवाले और संसारवृद्धि में कारण होने से हेय हैं अत: अध्यात्म भाषा में वे वास्तव में ध्यान हैं ही नहीं ।

4. शरीर और आत्मा का भेद-विज्ञान ।

5. समाधिमरण धारण करने से पूर्व आत्मा में प्रकट होने वाले भाव और विचार ।

6. कुटुम्ब परिवार के लोगों को सम्बोधन, उनसे क्षमायाचना और उनको क्षमा करना ।

7. कुटुम्ब परिवार के समस्त लोगों से नाता तोड़ नि:शस्त्र हो केवल ऐसे धर्मात्मा लोगों से ही सम्बन्ध रखना जो उसके समाधिमरण कराने में वास्तविक रूप से सहायक हो सकें एवं यदि उसका मन डांवा-डोल होने लगे तो समझा-बुझा कर उसे सही मार्ग पर आरूढ़ रख सकें ।

प्रस्तुत रचना उक्त बिन्दुओं में से 4, 5 और 6 पर विस्तार से प्रकाश डालती है ।

इस रचना को साधर्मी भाई ब्र० रायमल्ल का माना जाता है क्योंकि यह उनके द्वारा निबद्ध ज्ञानानंद श्रावकाचार (ज्ञानानन्द पूरित निर्भर निजरस शास्त्र) में गर्भित प्राप्त हुई थी जो सर्वप्रथम सद्बोध रत्नाकर कार्यालय, बड़ा बाजार, सागर से वि० सं० 1975 में प्रकाशित हुआ था । पुन: यही श्रावकाचार दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, भोपाल से डा० देवेन्द्रकुमार शास्त्री जावरा द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हुआ है ।

कई ग्रंथ सूचियों में कुछ पाण्डुलिपियों के आधार पर इस श्रावकाचार का कर्ता पं० टोडरमलजी को भी बताया गया है ।

जयपुर के दो मन्दिरों में प्रस्तुत रचना "समाधिमरणस्वरूप" नाम से स्वतन्त्र रूप में प्राप्त हुई है :—

1. मन्दिर जी सांगाकान में गुटका सं० क 1421, साईज 18×21 सेमी. सजिल्द। ऐसा अनुमान होता है कि गुटका में सल्लेखना सम्बन्धी सम्पूर्ण जानकारी देने का प्रयत्न किया गया है। गुटके में प्रत्येक रचना की पत्र संख्या अलग-अलग दी गई है। ऐसा प्रायः कम ही होता है।

2. दि० जैन मन्दिरजी चौधरियान वे० सं० 86/पत्र सं० 16 ले. का. संवत् 1883 की मिति मागिर्षु कृष्ण पक्षी 11 ग्यारसी।

इसके बाद में काती बुदि अष्टमी बुधवार संवत् 1883 में रचित एक पद्यबद्ध प्रशस्ति है।

मार्गशीर्ष कार्तिक के पश्चात् आता है अतः स्पष्ट ही यह पाण्डुलिपि मार्गशीर्ष में किसी ऐसी दूसरी पाण्डुलिपि से प्रतिलिपि की हुई है जिसमें प्रतिलिपिकार की उक्त प्रशस्ति थी और जिसे इस पाण्डुलिपि के लिपिकार ने "समाधिमरणस्वरूप" की प्रतिलिपि पूर्ण करने के पश्चात् प्रतिलिपि की थी।

यह प्रशस्ति "समाधिमरणस्वरूप" के रचनाकार के सम्बन्ध में अन्तिम निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रशस्तिकार ने प्रशस्ति के छन्द 6 में स्पष्ट लिखा है :—

"समाहिमरणकथा है सही, तामे बात धरम की कही।
ताहिकर्त्रि राम है सही, लीख्यो ग्रंथ ए महापुराण ।। 6 ।।"

इसमें "राम" से स्पष्ट ही उन दौलतराम जी की ओर संकेत है जिन्होंने महापुराण की रचना की। उस समय नाम इस प्रकार भी संक्षिप्त करके लिखे जाते थे। कभी नाम का पहला पद लिख दिया जाता था और कभी दूसरा। उदाहरण स्वरूप महापण्डित टोडरमलजी को कहीं "टोडर" और कहीं "मल्लजी" इन संक्षिप्त नामों से भी अभिहित किया गया है। (देखें पं० टोडरमल : 'व्यक्तित्व और कृतित्व', लेखक—डा० भारिल्ल, पृष्ठ 43, टिप्पण 6)

आलोच्य रचना को भाई रायमल्ल कृत मानने में दूसरी बाधा है इसकी भाषा । रायमल्लजी की जो अब तक 1. जीवन पत्रिका, 2. इन्द्रध्वजविधान महोत्सव पत्रिका, 3. चर्चा संग्रह तथा 4. ज्ञानानन्द श्रावकाचार ये चार रचनाएं उपलब्ध हैं उनमें से किसी भी ग्रंथ की भाषा से "समाधिमरणस्वरूप" की भाषा मेल नहीं खाती । विशेष रूप से कुटुम्ब परिवारादिक से ममत्व छुड़ाते समय उनको जिस भाषा में संबोधित किया गया है वह भाषा तो निश्चय ही साधर्मी भाई रायमल्लजी की नहीं हो सकती क्योंकि वह स्पष्ट ही ढूँढ़ारी है जिसका प्रयोग उन्होंने अपनी अन्य रचनाओं में कहीं नहीं किया है ।

कुटुम्ब परिवार से ममत्व छुडानेवाले प्रकरण की भाषा दौलतरामजी की आदिपुराण वचनिका से पूर्णतः साम्य रखती है ।

इस रचना के सम्पादन हेतु श्री रोशनलालजी जैन, प्रो० के. के. ट्रेडर्स एवं श्री ज्ञानचन्द्रजी खिन्दूका, संयोजक, जैनविद्या संस्थान श्रीमहावीरजी, जयपुर की प्रेरणा रही । सच तो यह है कि यदि वे इस सम्बन्ध में मुझे निरन्तर टोकते न रहते तो यह प्रकाशन पाठकों के समक्ष आता ही नहीं । पं० अनूपचन्दजी न्यायतीर्थ एवं शोधार्थी श्री वीरसागरजी आदि ने आवश्यक पाण्डुलिपियां एवं अन्य साधन जुटा कर सहायता की । इन सबका ही मैं हृदय से उपकृत हूं ।

आशा है अध्यात्म-प्रेमियों को यह प्रयास रुचिकर होगा और इससे उनमें आत्मकल्याण हेतु उत्साह जागृत होगा ।

भंवरलाल पोल्याका

जयपुर
महावीर जयंती
चैत्र शुक्ला १३ वी. नि. सं. २५१७
२८ मार्च, १९९१

॥ महावीराय नमः ॥

समाधिमरणस्वरूप

1 अथ अपनें इष्टदेव कौं नमस्कार करि अंत–समाधिमरण का सरूप बरणन करिए है सो हे भव्य तू सुंणि ।

2 सो ही अबै लक्षण बरणन करिए है—

सो समाधि नाम निकषाय का, शांति परिणाम का है । अैसा या का सरूप जांननां । आगैं और विशेष कहिए है—

3 सो सम्यक् ग्यांनी पुरुष है त्यां का यह सहज सुभाव ही है सो समाधिमरण ही कूं चावै है । अैसी निरंतर सदैव भावनां बरतै है । पाछै मरण का मौसर निकटि आवै है तव अैसै सावधांन होए है मानौं सूता सिंघ क ताई काहू पुरुष नैं ललकार कीया—हे सिंघ अपणां पुरुषारथ करौ । थां उपरि वैर्यां की फौज आंनि प्राप्त भई है सो गुफा बाहरि सिताबी निकसौ जेतै वैरी का वृंद कहीए समूहै कैताएक दूरा है, तेतैं तुम निकसि वैरी की फौज नैं जीतौ । मंहंत पुरुषां की एही रीत है सो उठता पहिली उठै ।

4 अैसा वचन वैं पुरुष का सुणि सार्दूल सिंघ ततक्षण हीं उठतो हूवो अर अैसी गुंजार करतो हूवौ मांनो असाड मास कै महीनैं इंद्र ही धडूक्यौ ।

5 सो अैसी सिंघ की गुंजार सुणि वैर्यां की फौज विसै हस्ती घौडा पुरुष छा ते कंपायमान होता हूवा अर सिंघ का जितवानै असमर्थ हूवा । हाथ्यां का समूह छा ते आगां न पैड तीन धरता हूवा । कैसा छै हस्त्यां का समूह ? त्यां का हृदै विषै सिंघ का आकार पठै गया है सो हस्ती धीरज नांहीं धरै है । खिण खिण मैं नीहार करै है । सिंघ का पराक्रम सहार्या नांही जाय है । पुरुष सो ही भया सार्दूल सिंघ, ताकै अष्ट कर्म्म सो ही भया वरी सो मरणसमय विषै याकौं विशेष परणैं जीतवा का उद्यैम करै है सौ असा कर्म्म का अनुस्वार जांणि सम्यक्

ज्ञांनी पुरुषै है ते सींघ की सी नांई सावधांन होइ है अर कायरपना नैं दूरि ही तैं छाडै हैं ।

6 बहुरि कैसा हैं सम्यक्दष्टी पुरुष ? त्यांका हृदै विसै आत्मा का सरूप ददोप्यमांन परगट प्रतिभासै है । कसै प्रतिभास है ? ज्ञांनजोति नैं लोयां आनंदरस करि झरतौ अैसो साक्षात पुरुषाकार अमूर्त्तीक चैतन्य धात कौ पिंड अनंत गुणां करि पूरित चैतन्यदेव आपकौं जानै है ताका अतिसै करि पर द्रव्य सौ अंस मात्र भी रंजित कहिए रागी नांही होय है । अपणां निज सरूप तौ वीतराग ग्यातादष्टा पर द्रव्य सो भिन्न सासता अविनासी जाण्या है अर पर द्रव्य का गलन-पूरन खिनभंगुर असास्ता आपनां सुभाव सौं भिन्न भली भांति नीकैं जांण्या है ता तैं सम्यक्ज्ञांनी पुरुष मरन सौं कैसे डरै है ?

7 सो सम्यक् ज्ञांनी पुरुष मरन समै का मौसर विसै कांई भावनां भावै अर कांई विचार करै ? अैसा जांण है—

8 अबैं इ शरीर का आयुर्बल तुछ है ए चीहन मूंनै प्रतिभासै हैं तातैं मूनैं अवैं सावधांन होनां उचित है । ढील करनां उचित नांही । जैसैं सुभट रणतूरभेरि वाज्या पाछै वर्यां परि चढिवा की ढील क्षिण-मात्र भी नांही करैं हैं । वीररस चढि आवै है । कधां जाय वर्यां सूं भिडां अर कधां वर्यां का समूहै नैं जीतां अैसी जां क अभीलाषा लागि रही है त्यौ ही म्हारै भी अवैं काल का जीतीवा का अभिप्राय है सो हे कटूब–परिवार के तुंम सुणौ हौ । अहो देखौ इस पुदगल परय्याय का चरित्र सो आख्यां देखतां ही उत्पन्न भया अर आंख्या देखतां–देखतां ही अदैं विलै जाबा लागा । सो मैं तो पहल्यां ही या का विनाशीक सुभाव नीकैं जांन था । फैर ही अबैं यह मौसर आंनि प्राप्त भया । सो अबैं इ शरीर का आयु तुछ रह्या है तामैं भी समय गलता जाय है । सो मैं ग्याता दृष्टा हूवा देखू हूं । अर मैं याका पाडोसी हूं, याका स्वांमी नांही वा कर्त्ता नांही सो अवै देखूं या सरीर का आयुर्बल कैसैं पूर्ण होई अर कसै सैंरीर का नास होई सो मैं ताकि रह्या हूं अर तमासगीर हूवा चरित्र देखूं हूं सो ए अनंत पुद्गल की परमोंणुवां एकठी होइ शरीर पर्याय कूं निपजाया है वा निर्म्माप्या है,—शरीर कोई जुदा ही पदार्थ *नांही, अर मेरा स्वरूप नांही । मेरा स्वरूप तौ एक चैतन्य स्वभाव* सास्ता अविनाशी है । ताकी अदभुत महिमा है सो मैं कौंन कूं कहूं ?

9 बहुरि देखौं इस पुद्गल पर्य्याय का महांतम सो अनंत परमांणुवां का एक सा परणमन ऐता दीन रह्या सो यह बड़ा आश्चर्य ! अबै इह पुद्गल की परमांणु वो भिन्न भिन्न अन्य सुभाव कौं अन्य रूप परणवैं लागी तौ यह आश्चर्य नांही । जैसे लाखौं मनिख एकठा होय मेला नांमां पर्याय कूं निर्मापै है अर केताइक दीर्घ काल पर्यंत वै मेला नांमां पर्याय सासता रहै है तौ या का आश्चर्य्य गिनिए । एता दिन लाखौ मनिखनि का परिणमन एक सा रह्या, अैसा विचार देखनेंवाला पुरष अचिरज मांनै हैं । पाछै वे लाखौ मनिख जुदा जुदा दसों दिसा नै गंमन करि जांय है तब मेला का नाश होय है ।

10 सो एतौ पुरषां का अन्य अन्य रूप परणमनता सो ए तौ या का स्वभाव ही है । या का अचिरज कसैं गिनिए ? त्यौ ही अवै ए सरीर और प्रकार का और प्रकार परणवैं हैं तौ अवैं ए थिर कैसैं रहसी । अवै ई शरीर पर्य्याय राखिबा नैं कोई समर्थ नांही ।

11 सो क्यौं समर्थ नांही ? सो ई कहीए है—जेतेक त्रिलोकविषै पदार्थ है सो अपनां अपनां स्वभावरूप परिणमैं हैं । कोई किस कूं परणमावै नांही, कोई किस का कर्त्ता नांही अर कोई किस का भोगता नांही । आपैं आवै, आपै जाय । आपैं मिलैं, आपै विछडैं । आपैं गलै, आपै पुरै तो मैं इसका कर्त्ता, इसका भोगता कैसैं ? अर मेरा राख्यां यह शरीर कैसैं रहै ? अर मेरा दूर कीया यह शरीर कसैं दूरि होई ? मेरा क्यौं कर्त्तव्य है ही नांहीं । झूठ्यां ही कर्त्तव्य मांनें था तातैं अनादिकाल का खेद-खिन्न आकुल-व्याकुल होई महादुख पावै छा सो यह वात नाय ही है । जाका कर्त्तव्य तौ क्यौं चलै नांही । वे पर द्रव्य का कर्त्ता होय पर द्रव्य कूं अपनां स्वभाव कै अनुस्वार परणमांवै तो दुख पावैं ही पावै । तातैं म तौ एक ज्ञायक सुभाव ही का कर्त्ता हौं अर ताही का भोगता हौं अर ताही कूं वेदूं हूं वा ताही कौं अनुभवौ हौं । सो इस शरीर कै जातैं मेरा कछु भी विगार नांही, अर शरीर कै रहें तै मेरा कछु भी सुदार नांहीं । ए तो परतक्ष अचेतन द्रव्य है । जैसा काष्ट पाषांण तैसा यह शरीर । काष्ट पाषांण मैं अर ई शरीर मैं भेद नांही । ई शरीर विषै ए जांणपणां का चिमत्कार है सो तौ मेरा स्वभाव है, इस शरीर का स्वभाव नांही । शरीर तौ परतक्ष मुरदार है मैं शरीर मांहि सूं निकस्या *अर शरीर कूं मुरदा जांनि दग्ध कीया । मेरै ही मुलाभै इस सरीर का* जगत आदर करै है । जगत के तांई असी खबर है नांहीं—सो आत्मा

न्यारा है अर शरीर न्यारा है। तातैं ए जगत भरम करि ही इस शरीर कौं अपनां जानि ममत करै हैं अर या कै जातैं या कूं बहुत झूरै है अर विशेष शोक करै हैं।

12 काई शोक करै हैं? हाय, हाय, म्हारा पुत्र तू काहा गयौ? अर हाय, हाय, म्हारा खांवंद तू कहां गयौ? हाय पुत्री! तू काहां गइ? हाय माता! तू काहा गइ? हाय पिता! तू काहा गया? हाय इष्ट भ्रात! तू कहां गयौ? इत्यादि अज्ञांनी पुरुष उस पर्यायां कौं सत्य अपनां जांनि अनेक तरैंह का विलाप करि झूरै हैं अर महा दुख कलेश कूं पावै हैं अर ज्ञांनि पुरष अैसैं विचारै हैं—अहो, कुणी का पुत्र कुण की पुत्री, कुण का खावंद, कुण की स्त्री, अर कुण की माता, कुण कौ पिता, अर कुण की हवैली, कुण का मंदिर, कुण का धन, कुण का माल, कुणी का आभूषण अर कुणी का वस्त्र? इत्यादि सर्व सामग्री झूठी। ए सामग्री क्यौं वस्त ही नांही। जैसे सुपनां कौ राज्य वां जैसे इन्द्रजाल कौ तमासौ। जैसैं भूतां की माया, जैसैं आकास विषै बादल की सोभा।

13 ए सामग्री दीसती तौ बहौत रमणीक सी लागैं हैं परंतु वस्तु सुभाव विचारतां ए क्यौ भी नांही। जे वस्तु होती तौ थिर रहती। नाश नैं क्या नैं प्रापति होती। तीसूं मैं अैसा जांनि सर्व त्रिलोक्य विषै पुद्गल का जेताइक पर्याय है ताका ममत्त छांडु हुं तैसैं ही शरीर का ममत्त छांडु हुं। शरीर कै जातैं मेरा परणामां विषै अंस मात्र भी खेद नांही। ए सरीरादि सामग्री है सौ चाहै ज्यौं परणमौ, मेरा कछु भी पीरोजन नांही। भावै छीजौ, भावै भींजौ, भावै परलै नैं प्रापति हौ। भावै एकठी आनि मीलौ, भावै जाती रहौ। म्हारो क्यौं भी मुतलब नांहीं।

14 अहो, देखो मोह का सुभाव। परतख्य यह सामग्री पर वस्तु है अर तामैं भी विनाशीक हैं, अर परभव विषै दुखदाई हैं, अर ईस भव विषै भी दुखदाई हैं तौ भी यह शंसारी जीव आपनी जांनि जांनि राख्या ही चाहैं हैं। सो मैं अैसा चरित्र देखि ज्ञाता दृष्टा भया हूं। मेरा एक छोछा ज्ञान सुभाव है ताहि अवलोकूं हूं अर काल का आगमन देखि मैं नाहि डरूं हूं। काल तौ इस शरीर का लागू है, मेरा लागू नांही। जैसे माखि दौडि दौड़ि मिष्ठादि वस्तु विषै ही जाय जाय बैठै है परि अग्नि विषै कदाचि भी बैठै नांही त्यौं ही ए काल दौडि दौडि शरीर ही कौ गासीभूत करै अर मो सूं दूरा दूरा ही भाजै है। मैं तौ अनादि का

अविनाशी चेतन्य देव त्रिलोक करि पूज्य अैसा पदार्थ ता विषैं काल का जोर नाही सौ अवै कुण मरै अर कुण जीवै, अर कुण मरण को भय करै। मूनै तो मरण दीसता नांहीं। मरै छै सो पहल्यां ही मूवा छा अर जीवै छै सो पहल्यां ही जीवै छा। मरै सो जीवै नही, जीवै सो मरै नही।

15 मोहवृष्टि करि अन्यथा भासै छा। अबै मेरे मोहक्रम विलै गया सो जैसा वस्तु का सुभाव छा तैसा ही मोकूं प्रतिभास्या। ता विषै जांमण अर मरण अर दुख अर सुख देख्या नांही तौ अवै मैं काहे का सोच करूं मैं तौ एक चैतन्य धाम पर्म मूरति सासता वण्यां हूं ताका अवलोकन करि जामण-मरणादिक का दुख कैसे व्यापै।

16 बहुरि कैसा हूं मैं ? ग्यांनानंद निज रस करि पूरण भर्‌या हू अर शुद्धोपयोगी हूवा ग्यांन रस नैं आचरूं हूं वा ग्यांन अजुली करि सुधा अमृत नैं पीवूं हूं। ए सुधा अमृत मेरा सुभाव थकी उत्पन्न भया है तातैं स्वाधीन हैं पराधीन नाहीं। तातैं ताका भोग विषै खेद नांही।

17 बहूरि कैसा हूं मैं ? अपना निज स्वभाव विषै स्थित हौं। अडोल हूं, अंकंप हौं।

18 बहुरि कैसो हूं मैं ? सुरस रस करि निरभर कहिए अतिसय करि भर्‌या हूं। अर झलति कहीए देदीप्यमांन ग्यांन ज्यौति करि परगट अपनें ही निज सुभाव विषै तिष्टौ हौं।

19 देखौ अद्‌भुत इ चैतन्य स्वरूप की महिमा ! ताका ज्ञांन सुभाव विषै समस्त ज्ञेय पदार्थ स्वयमेव झलकै है परिण ज्ञेयरूप नांहीं परिणमैं हैं। अर ताकै जांणतां विकलप का अंश भी नांही हो हैं। तातैं निर विकल्प अभोगत अतिद्री अनौपम्य वाधारहित अखंड सुख उपजै है। सो ए सुख संसार विषै नांही। संसार विषै दुख ही है। सुख की आभासा अज्ञांनी जीवां कूं भासै है।

20 बहूरि कैसा हूं मैं ? ज्ञांनादि गुण करि पूर्ण भर्‌या हूं वा ज्ञांनादि गुणमय एक वस्तु हूं। वां अंनंत गुणां की खांनि हूं।

21 बहुरि कैसा है मेरा चैतन्य स्वरूप ? जहां तहां चेतन्य सर्वांग विष व्याप्ति है। जैसैं लुण की डली का पिंड विषै सर्वांग खार रस व्याप्त है अथवा जैसै सकर्‌ की डली का पिंड विषै सर्वांग मिष्ट कहीए अमृत रस व्याप्त होइ रह्या है। वे सकर की कणिका छोछा अमृतमय

पिंड है तैसें ही मैं एक छोछा ग्यांनमय पिंड बण्यां हूं। मो विषै सर्वांग ग्यांन ही ग्यांन पावजे है। ते तै मनिका शरीर का आकार है तेतै ही मनि इस शरीर का निमित्तिक शरीर कै आकार ही मेरा आकार है। अर बस्त द्रव्यत्व सुभाव विचारतां तीन लोक प्रमांण मेरा आकार है सो अवगाहा शक्ति करि एते आकारविषै एता आकार समाहि गया है। एक परदेस विषै असंख्यात असंख्यात प्रदेश भिन्न भिन्न तिष्टै है। सर्वज्ञ-देव जुदा जुदा अैसै ही देखै है। या मैं संकोच विस्तार सकति है।

22 बहुरि कैसा है मेरा निज स्वरूप ? अनंत आत्मीक सुख का भोगता है वा एक सुख ही को मूरति है। चैतन्यमय पुरुषाकार है। जैसैं मांटी का सांचा विषै एक शुद्ध रूपामय धात का बिंब निर्मापिए है तैसैं ही आतमां सुभाव ई शरीर विषै जांननां। मांटी का सांचा काल पाय गलि जाय वा वलि जाय वा फूटि जाय तब वे बिंब जू का त्यूं रहें। आवर्ण रहत सब जिन कूं प्रतक्ष दीखै। सांचा कै विनाश होतां बिंब का विनास नांहीं। वस्त पहिली ही दोय था। एक का नाश होतैं दूजा का नास कैसैं होइ। ए सर्व्व प्रकार नेम है। त्यौं ही काल पाय शरीर गलौ है तो गलौ। मेरा सुभाव का तौ विनास है नांही। मैं काहे का सोच करूं।

23 बहुरि कैसा है यहै ? चैतन्यसरूप आकासवत् निर्मल सूं निर्मल है। आकासविषै कोई जाति का विकार नांही। एक स्वछ निर्म्मलता का ही पिंड है अर कोई आकास नैं खडग करि छेद्या भेद्या चाहै अर अगनि करि वाल्या चाहै अर पांणी करि गाल्या चाहै तौ वै आकाश कैसैं छेद्या भेद्या जाय अर कैसैं वलैं अर कैसैं गलै ? कदाचि भि वाका नाश नांही।

24 बहुरि कोई आकाश कै तांई पकड्या चाहै अर तोड्या चाहै तौ कसैं पकड्या अर तोड्या जाय ? त्यौं ही म तौ आकाशवत् अमूर्त्तीक निर्म्मल सुं निर्म्मल निर्विकार, छोछा निर्म्मलता का एक पिंडा हूं। मेरा नाश किसी बात करि होय ? कोइ प्रकार करि नांही होय ए नेम है। जै आकाश का नास होय तौ मेरा भी नास होय, ऐसा जांनना। परि आकाश का सुभाव मैं मेरा भी नास होय। आकाश तौ जड अमूर्त्तीक पदार्थ है अर मैं चेतन्य अमूर्त्तीक पदार्थ हू। जैसे चैतन्य छा तौ अैसा विचार भया—सो यह आकांश जड़ हैं अर मैं चैतन्य हूं। मैरै विधमांन एह जांनपणां दीस है। आकाश कै दीसता नांही यह नंसंदेह है।

25 बहूरि कैसा हों मैं ? जैसैं सीसा एक छोछा स्वछ शकति का ही पिण्ड है वाकी स्वछ शकति विषै स्वयमेव ही घटपटादि पदार्थ आंनि झलकै है। सीसा स्वछ शकति विषै समस्त ग्येय पदार्थ स्वयमेव झलकै हैं। अैसी स्वछ शकति सुं तादात्म्य व्यापि-व्यापिक स्वभाव विषै तिष्टैं हूं। सर्वांग विषै एक स्वछता भरि रहि है मांनों एह ग्येय पदार्थ स्वछता-मय होय गया है परिण स्वछता न्यारी है अर ग्येय पदार्थ न्यारा है। सो ए स्वछ शकति का स्वभाव ही है। उस विषै पदार्थ का प्रतिबिंब आंणि ही पडै।

26 बहुरि कैसा हुं मैं ? अत्यंत अतिशय करि निर्म्मल साक्षात परगट ग्यांन का पुंज वण्या हूं। अर अत्यंत शांतीक रस करि पुरण भर्या हु। एक अभेद निराकुलित करि व्यापि-व्यापि हू।

27 बहुरि कैसा है मेरा चेतन स्वरूप ? अपणी अनंत महिमा करि विराजमांन है। कोई का सहाय नांही चाहै है, असहाय सुभाव नैं धरयां है, स्वयंभू है। एक अखंड ग्यांन मूरति पर द्रव्य सूं भिन्न सास्ता अविनाशी परम देव एही हैं और ईं उपरांति उत्कष्ट देव कौंन कूं मांनिए ? जै त्रिलोक त्रिकाल विषै होय तौ मानिए।

28 बहुरि कैसा है यह ग्यांन सरूप ? अपना सुभाव नैं छाडि अन्य रूप नांही परणवै है, निज स्वभाव की मर्यादा नांही तजै है। जैसैं समुद्र जल का समूह करि पूर्ण भर्या है, परिण सुभाव कूं छोडि अनंतर गमन नांहि करै है। अपणी तरंगावली सो ही भई लहरि त्यां करि अपनैं स्वभाव ही विषै भ्रमण करै हैं, त्यौं ही एह ग्यांनसमुद्र शुद्ध परणति तरंगावली करि सहित अपनें सहज सुभाव विषै भ्रंमण करै है। अैसी अंद्भुत महिमां करि विराजमांन मेरा सरूप परमदेव इस शरीर सूं न्यारां अनादि काल का तिष्टै है। मेरै अर ई शरीर कै पाडोसी का सा संजोग है। मेरा सुभाव अन्य प्रकार याका सुभावैं अन्य प्रकार। मेरा परणमन अन्य प्रकार याका परणमन अन्य प्रकार। सो अवै ए शरीर गलन सुभाव रूप परणवै है तो मैं काहे का सोग करूं अर काहे का दुख। मैं तौ तमासगीर पाडोसी हूवां तिष्टं हूं। मेरै ई शरीर सूं रागदोष नांहीं। राग दोष है सो जगत विषै निंद्य हैं अर परलोक विषै महादुखदाई है। एह राग दोष एक मोह ही तैं उपजै है। जाकै मोह विलै गया जाकै रागदोष भी बिलै गया। मोहकरि पर द्रव्य विषै अहंकार ममकार उपैजै है सो ए द्रव्य है सो ही मैं हूं, अैसा

तो अहंकार अर ए द्रव्य मेरा है अैसा मंमकार उपजै है। पाछ सामग्री चाही तौ आवै नांही है अर छोडी जाती न रहै है। पाछै ए आत्मा खेद-खिन्न होय है। अर जै सर्व्व सामग्री पैला की जाणिजे तौ काहे कौं वाका जावा आवा का विकलप उपजै। तातैं मैरे मोह पहलां ही विलै गया है अर मैं पहल्यां ही शरीरादि सामग्री विराणी जांणी है त्यौ अवै भी मेरै ई शरीर कैं जातैं काहे का विकलप उपजै ? कदाचि नांही उपजै। विकलप उपजावा वाले सकस का मैं भली भांति नाश कीया तीसूं मैं निरविकलप आंनंदमय निज सरूप नैं बारं-बारं सम्हालता वा यादि करता सुभाव विषै तिष्टूं हूं।

29 याहां कोई कहै—याह शरीर तुम्हारा तो नांही परंतु इस शरीर का निमित्तकरि ई ही मनिख पर्याय विषैं शुद्धोपयोग का साधन भली भांति होता था ताका उपगार जांणि याका राखणें का उद्यम वणैं तो उचित है, यामैं टोटा तौ नांही ? ताकौं कहिए है—हे भाई ! तैं ऐसा कह्या सो बात हम भी जांनैं हैं। मनिख पर्याय विषै शुद्धोंपयोग का साधन अर ग्यानांभ्यास का साधन अर ग्यांन वैराग्य की वधवारी इत्यादि अनेक गुणां की प्राप्ति होय है जैसी अन्य पर्य्याय विषै दुर्ल्लभ है पंरंतु अपणां संजमांदि गुण रह्यां शरीर रहै छै तौ रहो भलां इ छैं। म्हांकै कौई ई शरीर सूं वैर तौ है नांही। अर नही रहै छै तौ आपणां संजमांदि गुण निर्विकल्प पणैं राखणां। अर शरीर का ममत्त अवश्य छोडणां। शरीर कै वासतै संयमादि गुण कदाचि भी खोवणां नांही। जैसै कोई पुरुष रतनां को लोभी परदेश सूं आप रतनदीप विषै फूस की झूंपडी कूं निर्मापै है अर उस झूंपडी विषैं रतन ल्याय ल्याय एकठा करै अर जै उस झूंपडी कै अगनि लगि जाय तौ वह विचक्षण पुरष अैसा विचार करै—सो कोई इलाज करि अगनि का निवारन कीजे अर रतनन सहित इस झूंपडी कूं राखिजे। या झूंपडी रहैसी तौ हूं फेरि भी ई कै आंसीरै घणां रतन भेला करिस्यूं। सो वौ पुरष अगनि बुझती जांणै तो रतन राखि र वुझावै अर कोई कारण अैसा देखै—एह रतन गयां झूंपडी रहै छै तौ कदाचि भी झूंपडी रखिवा का उपाय करै नांही। झूंपडी नै तौं बलवादे अर आप संपूरण रतन ले अपणै देश उठि आवै। पाछै एक दोय रतन वेचि अनेक तरैंह की विभूति नैं भौगवै अर अनेक प्रकार के सुवर्णरूपामई मंदिर कहीये महिल वा हवेली वा वागादिक निर्वापै है। पाछै वा विषै स्थिति करि रंगकसवोय संयुक्त आंनंद क्रीडा करै अर निर्भै हुवा अत्यंत सुख सूं तिष्टै। त्यौ ही भेद विज्ञांनी पुरष छै ते शरीर

कै वासतै संजमादि गुण विषै अतीचार भी लगावै नांही अर अैसा विचारै—सो संजमादि गुण रहसी तौ हूं विदेह क्षेत्रां विषै जाय औतार लेस्यूं अर सीमंधर स्वांमी आदि वीस तीर्थंकर और घणां केवली और घणां मुनिराजां का वृंद कहीए समूह त्यां का दरसन करिस्यूं अर श्री तीर्थंकर केवली भगवान ताका चरणारविंद विषै क्षायक सम्यक्त का आरंभ करि तिष्टापन करस्यूं अर अनेक प्रकार के प्रश्न का उत्तर करि यथार्थ तत्त्वां को स्वरूप शरीरमुख तैं ज्यांणिस्यूं। अर राग दोष संसार का कारण छै त्यांकौ शीघ्र पणैं अतिसं करि जडामूल तै नास करस्यूं अर सरीर परमदयाल आंनंदमय केवल लक्ष्मी करि संयुक्त अैसा जिनेंद्रदेव सूरिज ताका सरूप कूं देखि दरसन रूपी अमृत ताका अतिसै करि आचरन करिस्यूं। पाछै आचरन करिवा थकी म्हारा कर्म्मकलंक धोया जासी तब हूं पवित्र होस्यूं। पाछै पवित्र होइ श्रीतीर्थंकरदेव कै निकटि दिक्षा धरिस्यूं। पाछै नाना प्रकार के दुद्धर तपश्चरण ग्रहण करिस्यूं। ताका अतिसय करि शुद्धोपयोग अत्यंत निर्म्मल होसी तब स्वरूपविषै अत्यंत लागिसी तब क्षपकश्रेणी चढवानैं सन्मुख होस्यूं। पाछै शीघ्रपणैं कर्म्मरूपी जे शत्रु तांसूं आठ्यां की राडि करि भवभ व जडाद्मूलसूं नास करि केवलग्यांन उपार्य सूं पाछै एक समैं विषै समस्त लोकालोक के त्रिकालसंबंधी चराचर पदार्थ मूंनैं दीससी। पाछै अैसा ही सुभाव सासता रहसी तौ मैं असी लिखमी का स्वांमी ताकैं इ शरीर सूं कैसें ममतु उपजै, अैसा सम्यक्ग्यांनी पुरुष विचार करता तिष्टै है—म्हारै दोन्यूं ही तरैं आंनद है। जै शरीर रहसी तौ फेरि भी शुद्धोपयोग नै ही आराद्धि स्यौं सो म्हारै कोइ प्रकार करि सुधोपयोग सेवन मैं तौ विघन दीसैं नांही तौ म्हारै कायर परणांमां विषै संत्तोश नै उपजै। म्हारा परणांम शुद्धस्वरूप सूं अत्यंत आशक्त है। ताकी आसक्तता कूं छुडावनै ब्रह्मा विष्णु मेहेस इंद्र धरणेंद्र नरेंद्र आदि कोई चलावा नैं समर्थ नांही। एक मोहकर्म्म समर्थ छा त्यां नै तो मैं पहिल्यां ही जीत्या सो अवैं म्हारै कोई त्रिक विषै वैरी रह्यौ नांही अर वैरी विनां त्रिकालत्रिलोक विषै दुख नांही तौ हे सभाजिन के लोको मेरै मरण का भय कैसैं कहीये तीसूं मैं आजि सर्व्व प्रकार निर्भय भया हूं, थे या वात नींका करि जाणौं अर या मैं संदेह मति विचारो।

30 अैसै शुद्धोपयोगी पुरष शरीर की थिति पूरण जांनै है तब अैसा विचार करि आनंदमय रहै है। कोई तरह की आकुलता नांही

उपजाव है। आकुलता है सो ई संसार कौ बीज है। इस ही बीज करी संसार की स्थिति है। आकुलता करी अनेक काल करि संच्यां हूंवा संयमादि गुण अगनि विषैं रुई भस्म होइ तैसैं भस्म होई हैं। तातैं सम्यग्दृष्टी पुरष छै त्यां नैं कोई प्रकार आकुलता करणी नहीं। निश्चै एक सरूप ही का वांरवार विचार करणां। बाही कूं वांरवार देखणां, वाही के गुणनि का चितवन करणां, वाही के पर्याय की अवस्था का विचार करणां, अर वाही का स्मरण करणां, वाही विषै स्थित रहणां अर कदाचि शुद्ध सरूप सूं उपयोग चलै तो अैसा विचार करणां—सो यह संसार अनित्य है। ई संसार मैं क्यौ भी सार नही। जै सार होता तो तीर्थंकर देव क्यां नैं छोडता ? तीसूं अवै निश्चै तौ म्हारौ सरूप ही मुनैं सरण है। अर वाह्य पंच परमैष्टी वा जिनवांनी वा रत्नत्रय धर्म्म सरणि हैं। और कदाचि सुपनांमात्र वा भोलै वीसरी म्हारा अभीप्राय करि मोनैं सरणि नांही है। म्हारैं यह नेम है।

31 अैसा विचार करि फेरि सुरूप विषै उपजोग लगावै अर फेरि भी ऊंठा सूं उपयोग तलै उतरै तो अरहंत सिद्ध ताका आत्मीक सरूप का अवलोकन करै अर ताका द्रव्य-गुण-पर्याय विचारै। पाछै वाका द्रव्य-गुण-पर्याय विचारतां उपयोग निर्म्मल होइ तब फेरि आपणां स्वरूप विषैं लगावै। आपणां स्वरूप सारिखौ अरहंत सिद्ध कौ स्वरूप छै। अरिहंत सिद्ध का सरूप सारिखौं आपणौं सरूप छै।

32 सो कैसैं द्रव्यत्व सुभाव मैं फेर नांही है अर पर्याय सुभाव विषै फेर है ही अर मैं हूं सो द्रव्यत्व सुभाव का ग्राहाक हूं तीसूं अरहंत कौं ध्यांन करतां आत्मां कौ ध्यांन भली भांति निकां सधै है अरु आत्मां कौ ध्यांन करतां अरिहंत कौं ध्यांन नीका सधै है। अरिहंत का स्वरूप मैं अर आत्मा का स्वरूप मैं फेर नांही है। भावै तौ अरिहंत कौ ध्यांन करौ, भावै आत्मां कौ ध्यांन करौ। अैसौ विचार करतौ सम्यक्दृष्टी पुरुष सावधान हूवो सुभाव विषै तिष्टै है।

33 अैंठा आगैं अवै काई विचार करै है अर कैसैं कटुंव परिवारादिक सो ममत्त छडावैं सोई कहिए है—

34 अहौ इस सरीर के माता पिता तुंम नींका करि जाणौं, यह शरीर एता दिन तुम्हारा छा अवैं तुम्हारा नांही। अवैं याका आयुर्वल पूर्ण भया सो कोई का राख्या रहै नांहीं। याकी एती ही थिति छी सो

अवें या सूं ममत्त छोडौ अवें यासूं ममत करिवा करि कांई ? अवें प्रीति करिवौ छैं सो दुख कौ ही कारण छैं। यौं शरीर पर्याय छै सो इंद्रादिक देवां कौ भी विनाशीक छै। या मरण समैं आवै तवै इंद्रादिक देव छैं ते जुलक जुलक मुंहडो चोघता ही रहै अर सर्व्व देवां का समूह देखतां कालकिंकर छै सो उठाय ले ही जाय। या कही की सकति नांही काल को द्राढां मांही सूं छुडाय खिणमात्र तौ राखै। सो यो काल किंकर एक एक नैं ले जातौ सर्व्व का भक्षण करिसी। अर जे अज्ञांनकरि काल कै वशि रहिसी त्यांकी याही गति होसी। सो थे मोह का वस करि विरांणां शरीर सूं ममत करौ छौ। अर राख्यौ चाहो छौ सो थांनैं मोह का वस करि संसार कौ चरित्र झूठौ दीसै नही। सो पैला कौ शरीर तो राखिवौ दूरौ ही रह्यौ। थे थांकौ शरीर तौ पहिली राख्यौ पाछै औरां का राखिवा कौ उपाय कीज्यौ। थांकी या भरम बुधि छै सो वृथा दुख कै अर्थि छै। थांनैं प्रतक्ष या दीसैं नही छै। आज पहली ई संसार विषै काल कही नैं छोड्या। अर अबैं कही नै छोडिसी। सो ही ये हाय देखौ आश्चर्य की बात। थे निरभै हूवा तिष्टौ हौ। सो यो थांकै कौंण अग्यांन पणौं छै। अर थांकौं कांई हौंणहार छै सो हूं नही जांणूं। तीस्यौ हूं थांनै पूछुं छूं—थांकै आपा पर की क्यौं खबरि भी छै सो म्है कुण छां अर म्हे कठां सूं आया छां अर म्हे पर्याय पूरी करि कठै जास्यां ? अर पुत्रादिक सूं महे प्रीति करां छां सो कुण छै अर एता दिन म्हां कौ पुत्र कठ छौ ? अवे मंहा कै पुत्र की मंमत बुद्धि हुई अर याका वियोग कौ म्हांनैं सोक उपज्यौ त्यां सूं अवैं थे सावधांन होई विचार करौ अर भरम रूप मति रहौ। थे तो थांकौ कार्य्य विचार्यां सुख पावौला। पर कौ कार्य्य अकार्य्य पैला कै हाथ छै यां कौ कर्त्तव्य क्यौ भी नांही। थे वृथा ही खेदखिन्न क्यौं प्रबतौं हौ अर आपणां आपा नैं मोह का वश करि संसार विषै क्यौ वोवौ छो। संसार विषै नरकादिक का दुख थांही नै सहैंणां पडैला। थांकी बेई और तौ नही सहैला। जिन धरम कौ अैसो उपदेश है नांही सो पाप करै कोई अर भोगवै कोई और। तींसूं मूंनै अमूती थांकी दया आवै छै सो म्हारौ उपदेश ग्रहण करौ। म्हारौ उपदेश थांनैं मंहा सुखदाई छै।

35 सो कैसैं सुंखदाई है सो ई कहिए है—

मै तौ जथार्थ जिनधर्म्म की सरूप जांण्यौं छै अर थे जिनधर्म्म सूं विमुख छौ तींसूं थानैं मोह दुख दे छै अर मैं मोह नैं जिनधर्म्म का प्रताप

करि सुलभपणौ जित्यौ छै सो यौ एक जिनधर्म्म को अतिसैं जांणों तींसूं थांनैं भी जिनधर्म्म कौ सरूप विचारिवौ कार्यकारी छै। देखौ थे प्रतक्ष ग्याता दष्टा आत्मा छौ अर ए शरीरादि परवस्तु छै। आंपणां स्वभाव रूप स्वयमेव परणवै छै कहीं का राख्या रहै नंहीं। भोला जीव भरम खाय छै। तींसूं थे भरमबुद्धि छोडौ अर एक आपापर की ठीकता करौ। ती मैं आपणौ हेत सधै सो ही करौ। विचक्षण पुरषां की या ही रीति छै। एक आपणां हेत नैं ही चाहै। बिनां परोजन एक पैंडै भी धरै नही अर थे मोसूं ममत्त जे तौं घैणौं करिस्यौ ते तौ दुख कै अर्थि होसी। कार्य्य कौं भी सरणौं नही।

36 यो जीव अनंतवार अनंत पर्य्यायां विषै न्यारा २ माता पिता पाया सो अबैं वे कठै गया अर अनंतवार ई जीव कै स्त्री पुत्र पुत्री का संयोग मिल्या सो वे कहां गया? अर पर्य्याय कै वीषै भ्रात कटुंब परिवारादि घणां ही पाया सो अबै कठै गया? सो संसारी जीव छैं ते पर्य्यायबुद्धी छै। जिसी पर्य्याय धरै तैसौ ही आपौ मानै अर वै पर्य्याय सू तनमन होइ परणवैं। या जांणै नही पर्य्याय का सुभाव छै ते विनाशीक है अर म्हां कौ सरूप नित्य सासतौ अविनाशी छै। अैसा विचार उपजै नही तीसूं थांनैं कांई दूषण छै? यो मोह कौ महात्म छै। परतक्ष सांची वस्त नैं झूठी दिखावै अर झूठी वस्त नैं सांची दिखावै। अर जाकै मोह गलि गयौ अैसौ भेद विज्ञांनी पुरष छै ते ई पर्याय सूं कसैं आपौ मांनैं अर कैसैं याकौ सत्य जांणैं अर कुणी कौ चलायौ चलै? कदाचि नंही चलै। तींसूं अबै मेरै ग्यांन भाव यथ्यार्थ भया है अर आपा पर की ठीकता भई है सौ मोनैं ठगवा समर्थ अबै कुण छै? अनादि काल कौ पर्य्याय पर्य्याय विषै घणौं ही ठगाय आयौ ताहि करि भवभौ विषै जांमण मरण का दुख सह्या तीसूं अबै थे नीकां करि जांणौं–थांकै अर म्हारै एता ही दिन कौ संयोग संबंध छौ सो अबै पूरौ हूवौ। सो थांनैं भी अबै आतम काज करिवो उचित है। मोह करिवौ उचित नांही। तींसूं अबै निज सरूप आपणौ सासतौ छै त्यानै सम्हालौ तामैं कोई तरह को खेद नांही। कोई पासि जावणौ नांही। आपणां ही घर मैं महा अमोलिक निधि छै तीह नैं सम्हाल्यां जनम का दुख विलै जांय हैं जेताइक संसार विषै दुख छै तेताइक, आपौ जाण्यां विनां छै तासूं एक ज्ञांन नैं ही आराधौ। ग्यांन सुभाव छै सो आपणौ निज सरूप छै। ताकूं पायां यो जीव महा सुखी होय छै। ताकै पायां विनां ही दुखी छै। तींसूं यौ परतक्ष देखन जांणन हारौ ग्यायक पुरुष शरीर

सूं भिन्न अैसो आपणौं सुभाव ताकूं छोडि और किसी वात विषै प्रीति उपजै। जैसै सोलहां सुर्ग को कल्पवासी देव ख्याल अर्थि मध्यलोक विषै आय अर एक कोई रंक पुरष ताका शरीर मैं पैठौ अर वै रंक की सी क्रिया करिवा लागौ। कदे तौ काष्ट को भारौ मांथै धरि बाजार विषै बेचवा चाल्यौ अर कदे गारि कोस केरोले माता वा स्त्री नखै रोटी जाचवा लागौ। कदे पुत्रादिक कूं ले खिलावा लागो अर कदे राजादिक पैं जाय जाचनां करतौ हूवौं—भौ महाराजि हूं आजीवका करि घणौ दुखी छुं महारी प्रतिपालनां करौ। कदे टकौ मजूरी कौ ले दातलौ कडि कै खंसोली घास काटिवा चाल्यौ अर कदे रूपया कौ माल गुमाय अर रोवा लागौ। कैसै रोवा लागौ? रे वांह रे, अवै हूं कांई करि सूं। माहारौ धन चोर ले गया। मैं निठ निठ कुमाय कुमाए एकठौ कीयौ छौ सो आजि जातो रहौ सो अवै हूं कैसै काल पूरौ करि सूं। अर कदे नगर कै विषै भांजड पड़ी तब वैं पुरष एक लडिका कौं तौ कांधै चढायौ अरू एक लडिका की आंगली पकरि लीनी अर स्त्री वा पुत्री कूं आगैं करि लीनी अर तामैं छाजलौ चालनी वा हांडी रांधीवा की, वुहारी आदि सामग्री सूं छावड़ी भरि स्त्री कै मांथैं दीनी अर एक दोय गूदडा आदि पौट मैं बांधि आपणां माथा पैं लीन्ही। पाछै आधी रात्रि का नगर थी निकस्या। अर पाछै मारग विषै कौई राहगीर वटाऊ मिल्या ते पूछता हूवा—रे भाई! थे कठै चाल्या? तब यो पुरष कहतो हूवौ—ई नगर विषै वंरया की फौज आई है सो म्हे आपणौं धन ले अर भागां छां तीसूं और नगर जाय अवै गुंदरांन करस्यां। इत्यादि नाना प्रकार का चरित्र करतौ वह कल्पवासी देव आपणां सोलहां स्वर्गां कि विभूत्ति त्या नै क्षिण मांत्र भी नांही वीसरै है। वै विभूति का अवलोकन करि महासुखो हूवा विचरै है। वै रंक पुरष का पर्य्याय विषै भई जे नाना प्रकार की अवस्था ता विषै कदाचि अहंकार ममकार नांही आवै है। एक सोलहवां स्वर्गा की देवांगना आदि विभूति अर आपणां देवपुनीत सरूप ता विषै ही आवै है। त्यौ ही मैं सिद्ध समान आतम द्रव्य ई पर्याय विषै नाना प्रकार के चेष्टा करता थका आपणी मोक्ष लक्ष्मी नैं अर सिद्ध सादृश सरूप नैं नांही वीसरू छूं तौ हे लोको मैं काहे का भय करू। अैंठा आगैं सत्री नखां ममत छुडावै छै—

37 ऐ हो ई शरीर की स्त्री तू अवैं ई शरीर सूं ममत्त छांडि। तेरा अर इस शरीर का एत्ता ही संयोग छां सो अवै पूरा हूवा। तेरी

गरज अवैं ई शरीर सूं सरणी नांही, तिसूं तू अवै मोह छांडि विना प्रयोजन खेद मति करै। अर जै थारा राख्या शरीर रहै छै तौ राखि, मैं तोनैं वरजूं नाही अर जैं थारा राख्या शरीर रहै ही न छै तौं मैं कांई करूं ? अर जै तू विचार करि देखै तौ तू भी आतमां है मैं भी आतमां हू। स्त्री पुरष का पर्याय है सो पुदगलीक है तासूं कैसी प्रीति ? एह जड अर आतमां चैतन्य। ऊंट वैल का सा जोडा ! सो एह संयोग कैसें बनैं ? अर तेरा पर्य्याय है सो भी चंचल जांनि तू। तीसूं आपणां हेत क्यूं न विचारै ? हे स्त्री। एत्ता दिन भोग कीया ता करि कांई सिद्धि हुई ? तौ अवैं सिद्धि कांई होणी छै ? वृथा ही भोगां करि आतमां नैं संसार विषै वौयो या मरण समैं जांणी नांही अर मूवां पाछै तीन लोक की संपदा झूठी। तीसूं म्हां का पर्याय करतौ तौंनैं दरेग करवौ उचित नांही। जै तू म्हांको प्यारी छै तौ म्हांनैं धर्म्म कौ उपदेश दे या थारी विरिया छै। अर ज तू मतलब ही की सगी छी तो थारि तू जांनैं। म्हें थारा डिगाया किसा डिगां छां। म्हे तौ थारी दया करि तुंन उपदेस दीयो छै। मांनैं तो मांनी, नहीं मानैं तो थारो होणहार छै सो होसी, म्हां को तौ अवैं कूं मुतलब नांही तीसूं अवै म्हा नखा सूं जा अर प्रणांमां नैं सांति राखि। आकुलता मति करै। आकुलता छै सो ही संसार को वीज छै, अैसैं स्त्री कूं समझाय सीख दीन्ही।

38 अवै कुटंब परिवार कूं बुलाय कै समुजावै है—

अहौ कुटंब परिवार के अवैं ई शरीर का आयु तुच्छ रह्या है। अवैं म्हांकै परलोक नजीक छै तीसूं अवै म्हे थांनैं कहां छा—थे महां सूं कोई बात को राग कीज्यौ मति, थांकै अर म्हांकै च्यारि दिन को मिलाप छै लांवो तौ नांही। जैसें सराय कै विषै राहगीर दोय रात्रि भेला तिष्टै, पाछैं विछरतां दरेग करै। एह तो कौंण सं यांणपंति सूँ म्हां कै थां सूँ खिमां भाव छै। थे सारा ही आनंद मई तिष्टौ। अनुक्रम सौ सारां की या ही रीति होंणी छै सो अैसै संसार को चरित्र जांणि अैसो वुधजन कौंन है सो या सूँ प्रीति करै।

39 अैस ई कुटंव परिवार कूं समझाय सीख दीन्ही। अवैं पुत्रां *कौ वुलाय समझावै है*—

अहो पुत्रो ! थे स्यांणा छो। म्हां सूं कोई तरै को मोह कीज्यौ मति अर एक जिनेंश्वर देव को धर्म छै ताकूं निकां पालिज्यौ। थांनैं

धर्म ही सुखकारी होय लो। माता पिता सुखकारी नांही। माता-पिता नैं सुख का कर्त्ता कोई मांनै छै सो यह मोह का महातम जांनौ। कोई किस का नांही, कोई किस का भोगता नांही। सर्व्व ही पदार्थ आपणां आपणां स्वभाव का कर्ता भोगता है तींसूं अबैं म्हे थांनै कहां छां—जै विवहार मात्र म्हां की आज्ञा मानौं छो तौ म्हे कहां ज्यूं करौ। प्रथम तौ थे देवगुर धर्म्म की अवगाढ प्रतित्ति करौ अर सधाम्यां सूं मित्राई करौ अर दान, तप, शील, संयमता सूं अनुराग करौ अर स्वै पर विषै भेद विज्ञांन ताका उपाय करौ अर संसारी पुरषां सूँ प्रीति कहिए ममत्त भाव ताकूं छोडौ। सरागी जीवां की संगंत्ति सूं संसार विषै अनादि काल कों ई जीव महा दुख पायौ छै तातैं सरागी पुरषां की संगत्ति अवश्य छोडणी अर धरमातमां पुरषां की संगति करनी। अर धरमातमां पुरषां की संगति छै सो ई लोक विषै अर परलोक विषैं महासुखदाई है। ई लोक विषै तौ महानिराकुलता सुख की प्रापत्ति होय है अर जस की प्रापति होय है अर परलोक विषै स्वर्गादिकां का सुखां नैं पाय मोक्ष विषै शिवरमणी कौ भर्त्तार होय है अर निराकुलता अर्त्तेंद्री अनोपम्य वाधा-रहित सासता अविनाशी सुखनैं भोगवै है। तासूं हे पुत्रो! थांनै म्हां का वचन सत्य दीसै छै अर यामैं थांकौ भलौ ह्वै वो थानैं दीसै छै म्हांका वचन अंगीकार करौ अर थांनैं म्हां का वचन झूठा दीसै छै अर या मैं था को भलो हौवा नांही दीसै छै तौ म्हां का वचन मति अंगीकार करौ। म्हां कै थांसूं कांई बात को प्रयोजन छै नही। दयाबुद्धि करि थांनै उपदेश दीयो छै। सो मांनौं तो मानौं नही मांनौ तौ थांकी थे जांणौं।

40 अबै वै सम्यग्दृष्टी पुरष आपणी आयुजावक तुच्छ जांणैं है तव दांन-पुण्य करणौ होय सो आपणां हाथा स्यूं करै है पाछै जता पुरषां सूं वतलावणौ होई जतासूं बतलाय निस्यत्य होइ है पाछै सर्व्व कर्म्म का नता के जे पुरुष स्त्री ताकूं आप नखां सूं सीख देइ अर धर्म्म का नता के जे पुरुष तिन कु बुलाय नखैं राखै है। अर आपणां आयु नियम करि पूर्ण हूवा जांणै है तौ सर्व्व प्रकार परिग्रह का जाव-जीव त्याग करै है अर च्यारों अहार का जावज्जीव त्याग करै है अर सर्व्व परिग्रहां का भार पुत्रां नै सौप है। आप विशेषपणै निसल्य कहिए वीतरागी होय है। अर आपणां आयु का नियम नांही जांनै है। पूरा होय वा न होय असा संदेह वरतै है तो दोय च्यारि घडी आदि काल की मर्यादा करि त्याग करै जावैजीव त्याग नांही करै। पाछै खाट ऊपरां

सूं उत्तरि भूमि विषै सिंघ की सी नाइ निरभै तिष्टै। जैसै वैर्यां का जीतवा नैं शुभट उद्यमी होइ। त्रण भोमिका विषै तिष्टै। कोई जाति की अंशमात्र आकुलता नांही उपजावै है।

41 वहुरि कैसा है वह शुद्धोपयोगी सम्यक्दृष्टी जाकै मोक्षलक्ष्मी कां पाणिग्रहण की वांछा वरतैं है? अैसा अनुराग है सो अवार ही मोक्ष कूं जाय वरौं। ताका हृदा विषै मोक्षलक्ष्मी का आकार उकीरि रह्या है। ताकी प्रापति को शीघ्र चाहै है अर ताही का भय थकी राग परणति का प्रवेश नांही होयवा दे है अर अैसा विचारै है—कदाचि म्हारा स्वभाव विषै राग परणति आंणि प्रवेश कीया तौ मोक्षलक्ष्मी मूनैं वरवानैं सन्मूख हुई है सौ औटी होय जांसी तातैं मैं रांग परणति नैं दूरि तै छांडौं हौं। अैसा विचार करतौ काल पूर्ण करै है। ताका परणांमां विषै निराकुलित आंनंद रस वरसै है। ते शांतीक रस करि अत्यंत तृप्ति है। ता कै आत्मीक सुख विनां कोई वात की वांछा नांहीं, एक अतेद्री अभोगत सुख की वांछां है ताही कौं भोगवै है। अैसा स्वाधीन सुखी है सो जद्यपि साधरमी का संजोग है तथापि वाका संजोग पराधीन आकुलता सहित भासै है। अस्या जानै है। निश्चै विचारतां एभी सुख का कारण नांही। सुख का कारण एक मेरा शुद्धोपयोग है सो मेरा पासि है। तातैं स्वाधीनै है। अैसैं आनंदमई तिष्टै तौ सांत परणांमां संयुक्त समाधिमरण करै है पाछै समाधिमरण का फल थकी इंद्रादिक की विभूति नै पावै है। पाछै वहां थकी चय करि राजाधिराज होय है। पाछैं केताइक काल राज विभूति नै भोगि अरहंती दिक्षा धरै है। पाछै क्षिपक श्रेणी चढ़ि च्यारि घातिया कर्मां कौ नाश करि केवलज्ञांन लक्ष्मी नैं पावै है। कैसी है केवलज्ञांन लक्ष्मी? ताकै विषै समस्त लोकालोक के चराचर पदारथ तीन काल संबंधी एक समय मैं आंणि झलकै है ताका सुख की महीमां वचन अगोचर है।

॥ इति समाधिमरणस्वरूप संपूर्ण॥ संवत् १८८३ की मिति मागिर्षु कृष्ण पक्षी ११ ग्यारसी॥

चौपाई

जंवुदीप दीप सिणगार, खटखंड ता माही विसतार।
जामैं आरिजखंड म्हान, ता मध्य देश ढुढाहर जांनि ।। १ ।।

जै नगर ताहां सोभासार, राज करै जैस्यंघ अवतार।
ईत भीत जैठै कहु नाहि, जिन मिदरि सोभा ती ठाहि ।। २ ।।

जैन धर्म को भलो उजास, जैनीजन को ताहा है बास ।
चौपडि वीचि ताहा सोभासार, ता मध्य है आमैरि बजार ।। ३ ।।

तहा मंदिर चौधरियां तंणु, रिखभदेव नेमीसुर भणु ।
राजै और मुरति जिनतणी, दरसन करबा तै अघहणी ।। ४ ।।

जिन पुजा जहां होय त्रीकाल, रात दिवस श्रुत बंचै बिसाल।
सुणि नरनारी हरष लहाय, ।। ५ ।।

समाहिमरण कथा है सही, तामै बात धरम की कही।
ताहि कर्त्रि राम ह सही, लीख्यो ग्रंथ ए महापुरान ।। ६ ।।

साह जाति है मौतीराम, जतराम सुत है अभिराम ।
जाकै पुत्र तीन ह सही, नाव कहुं जासौ सच म्ही ।। ७ ।।

दोहा—पहलो तो स्यौलाल है, दुजो कालूराम ।
तीजो तो मोहन कह्यौ, जाणै सकल ज्याहान ।। ८ ।।

सोरठा–वीचलो कालुराम, श्रुत लीखवायो भाव सु।
चढवायो तीह ठांव, पढो सुणौ चीत चाव सु ।। ९ ।।

दोहा—कात्ती वुदि की अष्टमी वार भलौ बुधवार ।
संवत् अठारा सै कह्यौ, तीयासी सुखकार ।।१०।।

पुण्यतणो भंडार, सुण सुणाव चावै सु ।
घटो वधि अंक ज होय, सुध करि लीज्यो भाव सु ।।११।।

वाचो जीनै राम राम बंच्या

(हिन्दी अनुवाद)

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

1. यहाँ से अपने इष्टदेव को नमस्कार करके अंत समाधिमरण के स्वरूप का वर्णन करते हैं, वह हे भव्य ! तू सुन ।

2. अब उसके लक्षण का वर्णन करते हैं—निकषाय भाव, शांति रूप परिणाम का ही नाम समाधि है । इसका ऐसा स्वरूप जानना । आगे और विस्तार करते हैं—

3. जो सम्यक्ज्ञानी पुरुष है उसका यह सहज स्वभाव ही है कि वह समाधिमरण को ही चाहता है । इसकी ऐसी भावना निरन्तर सदा ही बनी रहती है । जब मरणसमय/अवसर नजदीक आता है तब इस प्रकार सावधान हो जाता है मानो सोये हुए सिंह को किसी पुरुष ने ललकारा हो—

हे सिंह ! अपना पुरुषार्थ करो । तुम्हारे पर दुश्मनों की फौज चढ़ आई है इसलिए शीघ्र गुफा के बाहर निकलो । चूंकि दुश्मनों का समूह अब थोड़ी ही दूर है इसलिए तुम बाहर आकर दुश्मन की सेना को जीतो । महान् पुरुषों की यह रीति है कि वह उठने से पहले उठते हैं । (अर्थात् शत्रु के सन्नद्ध होने से पूर्व ही वे स्वयं सन्नद्ध हो जाते हैं) ।

4. उस पुरुष के ऐसे वचन सुनकर शेर (सिंह) उसी क्षण उठ बैठा और उसने ऐसी गर्जना की मानो आषाढ़ के महिने में मेघ ही गर्जा हो ।

5. सिंह की ऐसी गर्जना सुनकर दुश्मन की सेना के जो हाथी, घोड़े और पुरुष थे वे सभी कंपायमान और सिंह को जीतने में असमर्थ

हो गये। हाथियों का समूह तीन कदम पीछे हट गया। वह हाथियों का समूह कैसा है ? जिनके हृदय में उस सिंह का आकार समा गया है। वे हाथी धीरज नहीं धरते। क्षण-क्षण में नीहार करते हैं। सिंह का पराक्रम सहन नहीं किया जाता। यहां सार्दूल सिंह तो पुरुष है और अष्टकर्म उसके दुश्मन हैं इसलिए (वह) मरण समय इन दुश्मनों को विशेष रूप से जीतने का उद्यम करता है। ऐसा कर्म के अनुसार जानकर जो सम्यक्ज्ञानी पुरुष हैं वे सिंह की तरह सावधान होते हैं और कायरपन को दूर से ही छोड़ देते हैं।

6. प्रश्न—सम्यक्दृष्टि पुरुष कैसा है ? उसके हृदय में आत्मा का स्वरूप देदीप्यमान (चमकता हुआ), स्पष्ट रूप से प्रतिभासित है। कैसे प्रतिभासित है ? ज्ञान ज्योति को लिए हुए आनन्द रस झरता हुआ ऐसा पुरुषाकार, अमूर्तिक, चैतन्य, धातु का पिण्ड, अनन्त गुणों से पूरित चैतन्य देव अपने को जानता है। उसके प्रभाव से वह पर द्रव्यों से अंश-मात्र/जरा सा भी रंजित या रागी नहीं होता है। अपना स्वयं का स्वरूप तो वीतराग, ज्ञाता-द्रष्टा, पर द्रव्य से भिन्न, शाश्वत, अविनाशी ही जानता है और परद्रव्य को पूरण-गलनशील, क्षणभंगुर अशाश्वत अपने स्वभाव से अलग अच्छी तरह जानता है। इसीलिए सम्यक्ज्ञानी पुरुष मृत्यु से कैसे डरे ?

7. वह सम्यक्ज्ञानी पुरुष मरण के समय क्या भावना करता है और क्या विचार करता है ? वह जानता है—

8. अब इस शरीर का आयुबल थोड़ा है, ऐसे लक्षण मुझे दीख रहे हैं, इसलिए अब मुझे सावधान होना उचित है। ढील/देरी करना उचित नहीं, जिस प्रकार अच्छा योद्धा युद्ध की तूर्य/बिगुल रणभेरी बजने के बाद दुश्मनों पर चढ़ाई करने में क्षणमात्र भी ढील/देरी नहीं करता। (उस समय) उसको वीररस चढ़ आता है। कब जाकर दुश्मनों से भिडूं और कब दुश्मनों के समूह को जीतूं, उसके ऐसी अभिलाषा लगी रहती है। वैसे ही अब मेरे भी काल/मृत्यु को जीतने का अभिप्राय/इच्छा है। इसलिए हे परिवारजन सुनो ! अहो, इस पुद्गल-पर्याय का चरित/नाटक देखो जो आंखों देखते उत्पन्न हुआ वह अब देखते देखते ही नष्ट होने लगा। मैं तो इसके विनाशी स्वभाव को पहिले से ही अच्छी तरह जानता था, अब फिर यह मौका आ मिला (जानने का)।

अब इस शरीर की आयु थोड़ी रही है। इसमें भी समय व्यतीत (नष्ट) होता जा रहा है। यह मैं ज्ञाता द्रष्टा होकर देख रहा हूं। मैं इसका पड़ौसी हूं, इसका स्वामी या कर्त्ता नहीं। इसलिए अब देख रहा हूं कि इस शरीर का आयुबल कैसे पूर्ण होता है और कैसे शरीर का नाश होता है, यह सब मैं तमाशगीर बनकर देख रहा हूं। पुद्गल के अनन्त परमाणुओं ने एकत्र होकर शरीर-पर्याय को निपजाया है/बनाया है। शरीर केवल एक भिन्न पदार्थ ही/नहीं है बल्कि मेरा स्वरूप भी नहीं है। मेरा स्वरूप तो एक चैतन्य-स्वभाव, शाश्वत, अविनाशी है, इसकी महिमा अद्भुत है, यह मैं किसको कहूं ?

9. पुनः इस पुद्गल पर्याय का माहात्म्य देखो ! इतने दिन अनन्त परमाणुओं का एक जैसा परिणमन रहा, यह बड़ा ही आश्चर्य है। अब इस पुद्गल के परमाणु भी भिन्न-भिन्न अन्य स्वभाव को अन्य रूप बदलने लगे हैं तो यह आश्चर्य नहीं है। जैसे लाखों मनुष्य इकट्ठे होकर मेला नाम की पर्याय का निर्माण करते हैं, कितने ही दीर्घकाल तक वह मेला नाम की पर्याय स्थित रहे तो इसका आश्चर्य ही मानिये। इतने दिन लाखों मनुष्यों का परिणमन एक सा रहा, ऐसा विचार कर देखनेवाला पुरुष अचरज करता है। बाद में वे लाखों मनुष्य दशों दिशाओं में अलग-अलग गमन कर जाते हैं तब मेले का नाश हो जाता है।

10. इतने पुरुषों का अलग-अलग रूप परिणमन करना यह तो इसका स्वभाव ही है। इसका अचरज क्या करना ? वैसे ही अब यह शरीर अन्य प्रकार से अन्य प्रकार में परिणमन कर रहा है, तो अब यह स्थिर कैसे रहेगा ? अब इस शरीर-पर्याय को रखने में कोई भी समर्थ नहीं है।

11. समर्थ क्यों नहीं है ? यह भी बताते हैं—त्रिलोक में जितने भी पदार्थ हैं वे सब अपने-अपने स्वभावरूप परिणमन करते हैं। कोई किसी को नहीं परिणमाता, कोई किसी का कर्ता नहीं है और नहीं कोई किसी का भोक्ता। वह स्वयं ही आता है और स्वयं ही जाता है, आप ही मिलता है और आप ही बिछुड़ जाता है, आप ही नष्ट होता है और आप ही जुड़ता है। फिर मैं इसका कर्त्ता-भोक्ता कैसे ? और मेरे रखने से यह शरीर किस प्रकार रहे ? मेरे दूर करने से

यह शरीर कैसे दूर हो ? मेरा कोई कार्य ही नहीं। मैं झूंठ ही मेरा कार्य मानता था इसी कारण अनादि काल से खेद-खिन्न आकुल-व्याकुल होकर महादुःख प्राप्त कर रहा था। सो यह बात न्याय ही है। जिसका कार्य तो कुछ नहीं हो, वह पर द्रव्य का कर्ता होकर उसे अपने स्वभाव के अनुसार परिणमन करावे तो दुःख प्राप्त करे ही करे। इसलिए मैं तो एक ज्ञायक स्वभाव का ही कर्ता हूं और उसी का भोक्ता हूं, उसी को जानता हूं, उसी का अनुभव करता हूं। इसलिए इस शरीर के जाने से मेरा कुछ भी नुकसान नहीं है और शरीर के रहने से मेरा कुछ भी सुधार / लाभ नहीं है। यह (शरीर) तो प्रत्यक्षतः अचेतन द्रव्य है। जैसे लकड़ी और पत्थर वैसा ही यह शरीर। लकड़ी-पत्थर और इस शरीर में अन्तर नहीं है। इस शरीर में यह जानने का/ज्ञापन करने का जो चमत्कार है वह तो मेरा स्वभाव है, इस शरीर का स्वभाव नहीं। शरीर तो प्रत्यक्ष/स्पष्ट मुरदार है/निर्जीव है। मैं शरीर के अन्दर से निकला और शरीर को मरा हुआ जानकर/मुर्दा समझकर जलाया [अर्थात् मेरे शरीर से बाहर निकलते ही इस शरीर को मुर्दा समझकर जला दिया जायेगा]। मेरे ही कारण संसार इस शरीर का आदर करता है। जगत् को ऐसी खबर नहीं है कि यह आत्मा अलग है और शरीर अलग है इसलिए यह जगत् भ्रम से ही इस शरीर को अपना समझकर ममत्व करता है और इसके जाते ही [नष्ट होते ही] इसके लिए बहुत रोता है और विशेष शोक करता है।

12. क्या शोक करता है—हाय—हाय मेरे पुत्र, तू कहाँ गया ? हाय–हाय मेरे पति, तू कहां गया ? हाय पुत्री, तू कहां गयी ? हाय माता, तू कहां गई ? हाय पिता, तू कहां गया ? हाय प्यारा भ्राता, तू कहां गया ? इत्यादि। अज्ञानी पुरुष उस पर्याय को सत्य ही, अपना समझकर अनेक अनेक प्रकार से विलाप करके रोता है और महा दुःख क्लेश प्राप्त करता है और ज्ञानी पुरुष इस प्रकार विचार करता हैं–अहो किसका पुत्र, किसकी पुत्री, किसका स्वामी [पति], किसकी स्त्री और किसकी माता, किसका पिता और किसका मकान, किसका मन्दिर, किसका धन, किसका माल, किसका आभूषण और किसके वस्त्र इत्यादि सभी सामग्री झूँठी है। इस सामग्री का कोई अस्तित्व ही नहीं, जैसे स्वप्न में पाया हुआ राज्य अथवा जैसे इन्द्रजाल [जादुई मायाजाल] का तमाशा, जैसे भूतों की माया, जैसे आकाश में बादलों की शोभा।

13. यः सब सामग्री दिखने में तो अत्यधिक मनोहर लगती है परन्तु वस्तु-स्वभाव का चिन्तन करें विचार करें, तो यह कुछ भी नहीं है। अगर यह वस्तु होती तो स्थिर रहती, विनाश को क्यों प्राप्त होती ? इसलिए मै ऐसा जानकर सम्पूर्ण त्रिलोक में पुद्गल के जितने भी पर्याय हैं उनसे ममत्व छोड़ता हूं, वैसे ही शरीर से भी ममत्व छोड़ता हूं। इस शरीर का जाने का मेरे परिणामों/भावों में अंशमात्र भी (जरासा भी) दुःख नहीं है। ये शरीर आदि सामग्री चाहे जैसा परिणमन करे मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं। चाहे नष्ट हो, चाहे भग्न (टुकड़े-टुकड़े) हो, चाहे प्रलय को प्राप्त हो, चाहे एकत्र होकर मिले, चाहे जाती रहे, मेरा कुछ भी मतलब नहीं।

14. अहो, मोह का स्वभाव देखो। यह सामग्री प्रत्यक्षतः परवस्तु है और उसमें भी विनाशी, परभव में दुःख प्रदान करने वाली है और इस जन्म में भी दुःखदाई है तब भी यह संसारी जीव (इसे) अपने प्राण जानकर रखना चाहता है। इसलिए मैं ऐसा चरित देखकर ज्ञाता-द्रष्टा हुआ हूं। मेरा एक केवल (एक मात्र) ज्ञान स्वभाव है, उसी को देखता हूं और काल का (मौत का) आगमन देखकर (भी) मैं नहीं डरता हूं क्योंकि काल तो इस शरीर का शत्रु है, मेरा नहीं। जिस प्रकार मक्खी मिष्ठान आदि वस्तुओं पर ही दौड़-दौड़ कर बैठती है परन्तु अग्नि पर कभी भी नहीं बैठती, वैसे ही यह काल (मृत्यु) दौड़-दौड़ कर शरीर को ही ग्रास बनाता है, मुझ से (तो) दूर-दूर ही दौड़ता है। मैं तो अनादि से अविनाशी चैतन्यदेव, तीनों लोकों में पूज्य पदार्थ हूं ऐसे पदार्थ पर काल का जोर [वश] नहीं। इसलिए अब कौन मरे ? कौन जीवे ? और कौन मृत्यु का भय करे ? मुझे तो मरण दीखता ही नहीं। जो मरता है वह तो पहले से ही मरा हुआ था और जो जीता है वह पहले से ही जीता है। जो मरता है वह जीता नहीं है और जो जीवित है वह मरता नहीं है।

15. [अब तक मै] मोहदृष्टि करके अन्यथा जानता था। अब मेरे मोह का क्रम [मोहकर्म] नष्ट हो गया इसलिए जैसा वस्तु का स्वभाव था [है] वैसा ही मुझे प्रतिभासित हुआ है। उसमें जन्म और मरण, दुःख और सुख देखा नहीं तो अब मैं किस बात का सोच करूं ? *मैं तो एक शाश्वत-चैतन्य धाम परममूर्ति हूं, उसका अवलोकन करने पर जन्म-मरण आदि का दुःख किस प्रकार अनुभव हो ?*

16. पुनः मैं कैसा हूं ? अपने ज्ञान-आनन्द-रस से भरा हुआ हूं और शुद्धोपयोगी होकर ज्ञानरस में आचरण कर रहा हूं अथवा ज्ञान-रूपी अंजलि से अमृतपान कर रहा हूं। यह अमृत मेरे स्वभाव से ही उत्पन्न हुआ है इसलिए स्वाधीन है, पराधीन नही अतः उसके भोग में दुःख नहीं है।

17. पुनः मैं कैसा हूं ? अपने स्वयं के स्वभाव में स्थित हूं, स्थिर हूं, कंपन रहित हूं।

18. पुनः मैं कैसा हूं ? सुरस रस से पूर्णतः भरा हूं और चमकती हुई अर्थात् देदीप्यमान ज्ञानज्योति द्वारा प्रकटतः अपने ही स्वभाव में स्थित हूं।

19. इस चैतन्यस्वरूप की अद्भुत महिमा देखो ! इसके ज्ञान स्वभाव में सम्पूर्ण ज्ञेय पदार्थ अपने आप ही प्रतिभासित हैं परन्तु [ज्ञान] ज्ञेयरूप में नहीं बदलता है और उसके जानने में विकल्प का अंश भी नहीं होता है। उससे निर्विकल्प, अभोक्ता, अतीन्द्रिय, अनुपम बाधा-रहित, अखण्ड सुख उत्पन्न होता है। यह सुख संसार में नहीं है। संसार में दुःख ही है, अज्ञानी जीवों को सुख का आभास होता है।

20. पुनः मैं कैसा हूं ? ज्ञानादि गुणों से पूर्णरूप से भरा हुआ हूं अथवा ज्ञानादि गुणमय एक वस्तु हूं अथवा अनन्त गुणों की खान हूं।

21. पुनः मेरा चैतन्य स्वरूप कैसा है ? जहां-तहां सभी अंगों में चैतन्य व्याप्त है। जैसे नमक की डली के पिण्ड के सभी अंशों/अंगों में खार रस व्याप्त है अथवा जिस प्रकार मीठे [शक्कर] के टुकड़े के पिण्ड के सभी अंगों में मीठा या अमृत रस व्याप्त है। वह शक्कर की कणिका केवल अमृतमय पिण्ड है वैसे ही मैं एक केवलज्ञानमय पिण्ड हूं। मेरे सभी अंगों में ज्ञान ही ज्ञान प्राप्त होता है। जितने परिमाण का शरीर का आकार है उतने ही परिमाण इस शरीर के निमित्तिक का आकार होता है। शरीर का आकार ही मेरा आकार है। और वस्तु के द्रव्यत्व-स्वभाव का विचार करें तो तीन लोक-प्रमाण मेरा आकार है। इसलिए संकोच-विस्तार की शक्ति से इस आकार में यह आकार समाहित हो गया है। *एक प्रदेश में असंख्य-असंख्यात प्रदेश पृथक्-पृथक् रहते हैं।*

सर्वज्ञदेव [इन्हें] पृथक्-पृथक् ही देखते हैं। इसमें संकोच-विस्तार की शक्ति है।

22. पुनः मेरा स्वरूप कैसा है ? अनन्त आत्मिक सुख को भोगने वाला है और एक सुख की ही मूर्ति है। चैतन्यमय पुरुषाकार है। जिस प्रकार मिट्टी के सांचे में एक शुद्ध चांदी की धातु का बिम्ब निर्मित किया जाता है वैसे ही इस शरीर में आत्मा का स्वभाव जानना चाहिए। मिट्टी का सांचा समय पाकर गल जाय, जल जाय या फूट जाय तब भी वह बिम्ब ज्यों का त्यों रहता है आवरण रहित सब लोगों को प्रत्यक्ष दीखता है। सांचे के विनाश से बिम्ब का विनाश नहीं होता है। वस्तु पहले से ही थी। एक के नष्ट होने से दूसरे का नाश कैसे होगा ? यह सर्व प्रकार से नियम है। उसी प्रकार काल को पाकर [मृत्यु के आने पर] शरीर गलता है। नष्ट होता है तो होवे। मेरे स्वभाव का विनाश तो है नहीं। मैं किस बात का सोच करूं।

23. पुनः कैसा है यह ? चैतन्यस्वरूप, आकाश के समान, निर्मल से भी निर्मल है। आकाश में किसी प्रकार का विकार नहीं, एक स्वच्छ निर्मलता का ही पिण्ड है और (अगर) कोई तलवार से आकाश को छिन्न-भिन्न करना चाहे और आग से जलाना चाहे, पानी से गलाना चाहे तो वह आकाश कैसे छिन्न-भिन्न हो ? कैसे गले और कैसे जले ? किसी भी प्रकार उसका विनाश संभव नहीं।

24. पुनः कोई आकाश को पकड़ना चाहे, तोड़ना चाहे तो (वह) किस प्रकार पकड़ा और तोड़ा जा सकता है ? उसी प्रकार मैं भी आकाश के समान अमूर्तिक, अतिनिर्मल, निर्विकार, केवल निर्मलता का एक पिण्ड हूं। मेरा नाश किस बात से हो (किस प्रकार हो) ? मेरा नाश किसी भी प्रकार नहीं होगा, यही नियम है। यदि आकाश का नाश हो तो मेरा भी नाश होवे, इस प्रकार जानना चाहिये। परन्तु आकाश के स्वभाव में मेरा भी नाश है (क्योंकि) आकाश तो जड़, अमूर्तिक पदार्थ है और मैं चैतन्य अमूर्तिक पदार्थ हूँ। जैसे चैतन्य था तब ही ऐसा विचार हुआ। यह आकाश जड़ है और मैं चैतन्य हूँ। मेरे में यह 'जानने का गुण' दीखता है, आकाश में नहीं दीखता इसमें सन्देह नहीं है।

25. पुनः मैं कैसा हूँ ? जिस प्रकार शीशा केवल एक स्वच्छ-शक्ति का ही पिण्ड है, उसकी स्वच्छ शक्ति में घट-पट आदि पदार्थ स्वयं ही आ झलकते हैं। (मैं) ऐसी स्वच्छ-शक्ति से तादात्म्य व्याप्य-व्यापक स्वभाव में स्थित हूँ। सभी अंगों में (सर्वांग में) एक स्वच्छता भरी है मानो यह ज्ञेय पदार्थ स्वच्छतामय हो गया है परन्तु स्वच्छता अलग है और ज्ञेय पदार्थ अलग हैं। इसलिए यह स्वच्छ शक्ति का स्वभाव ही है उसमें पदार्थ का प्रतिबिंब आकर पड़ता ही है।

26. पुनः मैं कैसा हूँ ? अत्यन्त-अतिशय, निर्मल साक्षात् प्रकट-स्पष्ट, ज्ञान का पुंज बना हूँ और अत्यधिक शान्तरस से पूरा भरा हूँ। एक अभेद, निराकुलता हो, पूर्णतः व्याप्त हूँ।

27. पुनः मेरा चैतन्यस्वरूप कैसा है ? अपनी अनन्त महिमा से विराजमान है। किसी की सहायता नहीं चाहता, असहाय (स्वाधीन) स्वभाव को धारण किये है, स्वयंभू है। यह एक, अखण्ड ज्ञान मूर्ति, परद्रव्य से भिन्न, शाश्वत, अविनाशी, परमदेव है और इसके ऊपर (इसके पश्चात्) उत्कृष्ट देव यही है। इसके अतिरिक्त उत्कृष्ट देव किसको मानें ? अगर त्रिलोक (तीन लोक), त्रिकाल (तीनों काल) में कोई हो तो मानें।

28. पुनः यह ज्ञान-स्वरूप कैसा है ? अपने स्वभाव को छोड़कर दूसरे रूप नहीं बदलता है, अपने स्वभाव की मर्यादा को नहीं छोड़ता है। जिस प्रकार समुद्र जल के समूह से एकत्र पूर्ण भरा है परन्तु स्वभाव को छोड़कर अन्यत्र/दूसरी जगह नहीं जाता है। अपनी तरंगावली से ही बनी लहरों से अपने स्वभाव ही में भ्रमण करता है। वैसे ही यह ज्ञान-समुद्र शुद्ध परिणतिरूपी तरंगावली के साथ अपने सहज स्वभाव में भ्रमण करता है। ऐसी अद्भुत महिमा से विराजित मेरा स्वरूप परमदेव इस शरीर से अलग अनादिकाल से विद्यमान है। मेरे और इस शरीर के पड़ौसी की तरह का संयोग है। मेरा स्वभाव अलग प्रकार का है और इसका स्वभाव अलग प्रकार का। मेरा परिणमन अन्य प्रकार का और इसका परिणमन अन्य प्रकार का है। इसलिए अब यदि यह शरीर गलन स्वभावरूप है परिणमता तो मैं किस बात का शोक करूँ ? किसका दुःख करूँ ? मैं तो तमाशा देखनेवाला (तमाशगीर)

पड़ौसी बना बैठा हूँ। मेरा इस शरीर से राग-द्वेष नहीं है। राग-द्वेष तो जगत् में निन्दनीय हैं और परलोक में अत्यन्त दुःख प्रदान करनेवाले हैं। ये राग-द्वेष मोह से ही उत्पन्न होते हैं। जिसका मोह नष्ट हो गया उसका राग-द्वेष भी नष्ट हो गया। मोह करने पर परद्रव्य में अहंकार-ममकार उत्पन्न होता है। यह द्रव्य है वह ही मैं हूँ, ऐसा तो अहंकार और यह द्रव्य मेरा है, इस प्रकार का ममकार उत्पन्न होता है। फिर यह सामग्री चाहने से तो आती नहीं और छोड़ने से जाती नहीं, पीछे यह आत्मा खेद-खिन्न होती है। यह सभी सामग्री दूसरों की है यदि यह जान लिया जाय तो उसके आने-जाने का विकल्प ही किसलिए उत्पन्न हो? इसलिए मेरा मोह पहले ही नष्ट हो गया है, मैंने शरीरादि सामग्री को पहले से ही पराई समझा है, माना है, इसलिए अब मुझे इस शरीर के जाते समय किस बात का विकल्प उत्पन्न हो? कभी भी उत्पन्न नहीं होगा। विकल्प उत्पन्न करनेवाले शख्स का मैंने भली-भांति नाश कर दिया है। इसी से मैं निर्विकल्प, आनन्दमय, अपने स्वरूप को बारम्बार सम्हालता और याद करता हुआ स्वभाव में स्थित हूँ।

29. यहां कोई कहे कि यह शरीर तुम्हारा तो है नहीं परन्तु शरीर के निमित्त से ही इस मनुष्य-पर्याय में शुद्धोपयोग का साधन भली-भांति होता था। उसका उपकार समझकर इसको रखने का उद्यम (कार्य) करे तो उचित है, इसमें नुकसान तो नहीं? उसको कहते हैं—हे भाई! तुमने ऐसा कहा यह बात हम भी जानते हैं। मनुष्य पर्याय में शुद्धोपयोग का साधन, ज्ञानाभ्यास का साधन और ज्ञान-वैराग्य में वृद्धि इत्यादि अनेक गुणों की जैसी प्राप्ति होती है वैसी अन्य पर्याय में दुर्लभ है। परन्तु अपने संयमादि गुणों के रहते शरीर रहता है तो रहे, अच्छा ही है। हमारा इस शरीर से कोई बैर/दुश्मनी तो है नहीं और यदि (शरीर) नहीं रहता तब भी अपने संयम आदि गुणों को निर्विकल्प रखना चाहिये और शरीर से ममत्वभाव का भी अवश्य त्याग करना योग्य है, संयमादि गुणों को शरीर के कारण कभी भी नहीं खोना। जिस प्रकार कोई रत्नों का लोभी पुरुष विदेश से आकर रत्नद्वीप में घास-फूस की झौंपड़ी बनाता है, उस झौंपड़ी में रत्नों को ला-लाकर एकत्र करता है। यदि उस झौंपड़ी में आग लग जाय तो वह बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकार विचार करता हैं—कोई भी उपाय करके अग्नि का निवारण कर रत्नों सहित इस झौंपड़ी को बचाया जाय, यह झौंपड़ी रहेगी तो मैं फिर इसी के

आश्रय से बहुत से (और) रत्नों को इकट्ठा कर लूंगा। अतः वह पुरुष अग्नि को बुझने योग्य जानकर, रत्न रखकर/बचाकर उसे बुझाता है और यदि कोई ऐसा कारण देखे कि इन रत्नों को खोकर झोंपड़ी बचती है तो वह कभी भी झोंपड़ी बचाने का उपाय नहीं करेगा। झोंपड़ी को जलती हुई छोड़कर और स्वयं सम्पूर्ण रत्न लेकर अपने देश पुनः आ जायेगा। बाद में, एक दो रत्न बेचकर अनेक प्रकार की विभूति (वैभव) को भोगने के लिए नाना प्रकार के सोने-चाँदी से युक्त मन्दिर, महल, हवेली, बाग आदि का निर्माण कराता है। पश्चात् उनमें रहकर रंग-सुगंध के साथ आनन्द-क्रीड़ा करता है और निर्भय होकर अत्यधिक सुख से रहता है। वैसे ही भेद-विज्ञानी पुरुष शरीर के कारण संयमादि गुणों में अतिचार भी नहीं लगाता और ऐसा विचार करता है—यदि ये संयमादि गुण रहेंगे तो मैं विदेहक्षेत्र जाकर अवतार (जन्म) लूंगा और सीमंधर स्वामी आदि बीस तीर्थंकरों, अनेक केवलियों और अनेक मुनिराजों के समूह का दर्शन करूँगा। श्री तीर्थंकर केवली भगवान् के चरणारविंद में क्षायक-सम्यक्त्व आरंभ करके ठहरूंगा। अनेक प्रकार के प्रश्नों का उत्तर पाकरके यथार्थ तत्वों का स्वरूप शरीरमुख (दिव्यध्वनि) से जानूंगा और राग-द्वेष संसार का कारण है उनको शीघ्रतापूर्वक, पूर्णतः जड़मूल से नाश कर दूंगा और शरीर परमदयाल, आनन्दमय, केवल-लक्ष्मी से युक्त, ऐसे जिनेन्द्रदेवरूपी सूर्य के स्वरूप को देखकर दर्शनरूपी अमृत का अतिशय रूप से पान करूँगा। पीछे आचरण द्वारा मेरे कर्मकलंक धुल जाएंगे तब मैं पवित्र होऊंगा। फिर पवित्र होकर श्री तीर्थंकरदेव के निकट दीक्षा धारण करूँगा। पश्चात् नाना प्रकार की दुर्धर तपश्चर्या ग्रहण करूँगा। उसके अतिशय से शुद्धोपयोग अत्यन्त निर्मल होगा तब स्वरूप में अत्यन्त मग्न रहूंगा तब क्षपक श्रेणी चढ़ने के सन्मुख होऊंगा। फिर शीघ्रतापूर्वक जो (आठ) कर्मरूपी शत्रु हैं उन आठों से लड़ाई करके भव-भव का समूल नाश करके केवलज्ञान उपार्जित करूंगा। पीछे एक समय में समस्त लोकालोक के त्रिकाल सम्बन्धी चराचर पदार्थ मुझे दीखेंगे। फिर ऐसा ही स्वभाव शाश्वत रहेगा। मैं जो ऐसी लक्ष्मी का स्वामी हूँ उसका इस शरीर से ममत्व कैसे उत्पन्न हो? सम्यक्ज्ञानी पुरुष इस प्रकार विचार करता है–मेरे दोनों ही प्रकार से आनन्द है। यदि शरीर रहेगा तो फिर भी (मैं) शुद्धोपयोग की ही आराधना करूंगा इसलिए मुझे किसी भी प्रकार से शुद्धोपयोग सेवन में तो विघ्न नहीं दीखता तो मेरे कायर परिणामों में संतोष क्यों

उत्पन्न नहीं होवे ? मेरे परिणाम / भाव शुद्ध-स्वरूप में अत्यन्त आसक्त हैं। उसकी आसक्ति को हटाने में, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, धरणेन्द्र, नरेन्द्र आदि कोई चलायमान करने में समर्थ नहीं। एक मोह कर्म ही समर्थ था, उसको तो मैंने पहले ही जीत लिया अब तीनलोक में मेरा कोई शत्रु नहीं रहा। तो हे परिवार के लोगो ! कहिये, मुझे मरने से किस प्रकार का डर ? इसलिए मैं आज सभी प्रकार निर्भय हो गया हूँ। आप लोग यह बात अच्छी तरह जान लो और इसमें सन्देह मत करो।

30. ऐसे शुद्धोपयोगी पुरुष शरीर की स्थिति पूर्णरूपेण जानते हैं और तब इस प्रकार विचार करके आनन्दमय रहते हैं, किसी तरह की आकुलता ही इस संसार का बीज है। इसी बीज से संसार की स्थिति है। आकुलता से अनेक समयों में संचित संयमादि गुण वैसे ही भस्म हो जाते हैं जैसे अग्नि में रूई भस्म हो जाती है इसलिए जो सम्यक्दृष्टि पुरुष है उसको किसी प्रकार की आकुलता नहीं करनी चाहिये। एक निश्चय-स्वरूप का ही बारम्बार विचार करना, उसी को बारम्बार देखना, उसी के गुणों का चिन्तन करना, उसी की पर्याय की अवस्था का विचार करना, उसी का स्मरण करना, उसी में स्थित रहना और कदाचित् शुद्ध-स्वरूप से उपयोग हटे तो इस प्रकार विचार करना—यह संसार अनित्य है, इस संसार में कुछ भी सार नहीं है, अगर सार होता तो तीर्थंकर देव (इसे) क्यों छोड़ते ? इसलिए अब निश्चय से मेरा स्वरूप ही मेरी शरण है, और बाह्य पंचपरमेष्ठी, जिनवाणी और रत्नत्रय धर्म शरण हैं। अन्य कभी भी स्वप्नमात्र में या भूले-भटके भी मेरे अभिप्राय में मुझे शरण नहीं, यह मेरा नियम है।

31. ऐसा विचार करके फिर स्वरूप में उपयोग लगावे, यदि फिर भी वहां से उपयोग नीचे उतरे तो अरहंत, सिद्ध और उनके आत्मिक-स्वरूप का अवलोकन करे और उनके द्रव्य-गुण-पर्याय पर विचार करे। पीछे उनके द्रव्य-गुण-पर्याय विचारते हुए उपयोग निर्मल हो तब फिर अपने स्वरूप में लगावें। अपने स्वरूप के समान ही अरहंत-सिद्ध का स्वरूप है, अरहंत-सिद्ध के समान अपना स्वरूप है।

32. ऐसा कैसे ?—क्योंकि द्रव्यत्व स्वभाव में अन्तर नहीं हैं, पर्याय-स्वभाव में अन्तर है ही, मैं द्रव्यत्व स्वभाव का ग्राहक हूँ। इसीलिए अरहंत का ध्यान करता हुआ आत्मा का ध्यान भली-भांति अच्छी तरह

से होता है और आत्मा का ध्यान करते हुए अरहंत का ध्यान अच्छी तरह से होता है। अरहंत के स्वरूप में और आत्मा के स्वरूप में अन्तर नहीं है। चाहे तो अरहंत का ध्यान करो चाहे आत्मा का ध्यान करो— ऐसा विचार करता हुआ सम्यक्दृष्टि पुरुष सावधान होकर स्वभाव में स्थित रहता है।

33. अब इससे आगे, क्या विचार करते हैं और किस तरह कुटुम्ब-परिवार आदि से ममत्व छुड़ाते हैं, वही कहते हैं—

34. अहो, इस शरीर के माता-पिता ! तुम अच्छी तरह जानते हो, यह शरीर इतने दिन तुम्हारा था, अब तुम्हारा नहीं है। अब इसका आयु बल पूरा हुआ इसलिए किसी के भी रखने से नहीं रहेगा। इसकी इतनी हो स्थिति थी। इसलिए अब इससे ममता छोड़ों अब इससे ममता करने से क्या ? अब इससे प्रीत करना तो दुःख का ही कारण है। यह शरीर-पर्याय तो इन्द्रादि देवों की भी नष्ट होती है। जब मरणसमय आता है तब इन्द्रादि देव भी आँसू बहाते हूए मुंह ही देखते रहते हैं और सभी देव-समूह के देखते-देखते ही काल-किंकर (यमदूत) उठाकर ले ही जाता है। किसी की भी यह शक्ति नहीं कि यम के मुंह से छुडाकर [उसे] क्षणमात्र के लिए तो रख ले। इस तरह यह यम का दूत एक-एक को ले जाकर सभी का भक्षण करेगा। जो अज्ञान करके काल के वश में रहेगा उसकी यही गति होगी। इस तरह तुम मोह के वशीभूत होकर पराये शरीर से ममता करते हो और (इसे) रखना चाहते हो इसलिए तुमको मोह के वशीभूत होने के कारण संसार का चरित झूंठा नहीं दिखाई देता। दूसरे का शरीर तो रखना दूर रहा, तुम पहले अपना शरीर तो रखो, बाद में दूसरों के (शरीर को) रखने का उपाय करना। तुम्हारी भ्रमित बुद्धि ही व्यर्थ दुःख का कारण है। तुम्हें यह (मृत्यु) प्रत्यक्षतः दिखाई नहीं देती। (क्या) आज से पहले भी इस संसार में मृत्यु ने किसी को छोड़ा है ? और अब (क्या) किसी को छोड़ेगा ? देखो, आश्चर्य की बात यही है कि तुम निर्भय होकर बैठे हो। यह तुम्हारा कैसा अज्ञानपन है ? तुम्हारा क्या होनहार हैं, वह मैं नहीं जानता। इसलिए मैं आप से पूछता हूं—आपको स्व पर [आपा-पर] की कुछ खबर भी है कि मैं कौन हूं और मैं कहां से आया हूं और मैं पर्याय पूरी करके कहां जाऊंगा ?····और पुत्रादि जिनसे मैं प्रीति करता हूं वे कौन हैं ? इतने दिन मेरा पुत्र कहां था ? अब मेरे पुत्र में ममत्व-

बुद्धि हुई और इनके वियोग का मुझे शोक उत्पन्न हुआ। इसलिए अब तुम सावसान होकर विचार करो और भ्रमित मत रहो। तुम अपना कार्य विचार कर ही सुख प्राप्त करोगे। दूसरों का कार्य-अकार्य दूसरों के हाथ है, उसमें करने योग्य कुछ भी नहीं। आप व्यर्थ ही खेद-खिन्न क्यों होते हो ? अपने निजत्व को मोह के वश करके संसार में क्यों बहते हो [घूमते हो] ? संसार में नरकादि के दुःख आपको ही सहने पड़ेंगे। आपकी जगह और कोई दूसरा नहीं सहेगा। जिनधर्म का ऐसा उपदेश/सिद्धान्त नहीं है कि पाप करे कोई और भोगे कोई और। इसलिए मुझे आप पर दया आती है। अतः मेरा उपदेश ग्रहण करो। मेरा उपदेश आपके लिए अत्यन्त सुख प्रदान करनेवाला है।

35. यह कैसे सुख देनेवाला है ? यह भी बताते हैं—मैंने तो यथार्थ जिनधर्म का स्वरूप जाना है और तुम जिनधर्म से विमुख हो। इसलिए आपको मोह दुःख देता है। मैंने मोह को जिनधर्म के प्रताप से सहजता से जीत लिया हैं। इसको जिनधर्म का एक अतिशय [प्रभाव] जानो। इसलिए आपको भी जिनधर्म के स्वरूप को विचारना कार्यकारी है। देखो ! आप प्रत्यक्ष ज्ञाता-द्रष्टा आत्मा हो और यह शरीरादि परवस्तु हैं। अपने स्वभावरूप स्वयं ही परिणमता [बदलता] हैं, किसी के रखने से नहीं रहता। भोला जीव भ्रम/धोखा खाता हैं। इसलिए आप भ्रम बुद्धि को छोड़ो और अपने और दूसरे/स्वपर की पहचान करो। जिसमें अपना हित सिद्ध हो वही करो। चतुर/समझदार पुरुषों की यही रीति है। (वे) एक अपने हित को ही चाहते हैं। बिना प्रयोजन के एक कदम भी नहीं रखते। तुम मुझसे जितना अधिक ममत्व करोगे उतने ही दुःख के भागी होवोगे। कोई भी कार्य सफल नहीं होगा।

36. इस जीव ने अनन्त बार अनन्त पर्यायों में अलग-अलग माता-पिता पाये, वे सभी अब कहां गये ? और इस जीव को अनन्तबार स्त्री, पुत्र-पुत्री का संयोग मिला, वे सब कहां गये ? और पर्यायों में भाई, कुटुम्ब, परिवारादि बहुत से प्राप्त किये वे सब अब कहाँ गये ? संसारी जीव के पर्याय-बुद्धि है। जैसी पर्याय धारण करता है उसे ही अपनी मानता है और उस पर्याय से तन्मय होकर परिणमन करता है। यह नहीं जानता कि पर्याय का स्वभाव विनाशी है और स्वरूप नित्य, शाश्वत अविनाशी है, ऐसा विचार उत्पन्न ही नहीं होता इसलिए आपका क्या दोष ? यह तो मोह का माहात्म्य है। प्रत्यक्ष / स्पष्ट, सत्य वस्तु को झूंठी दिखाता

है और झूंठो वस्तु को सच्चो दिखाता है। जिसका मोह नष्ट हो गया हो वह भेद-विज्ञानी पुरुष इस पर्याय को किस तरह अपना माने, कैसे इसको सत्य जाने और किसके चलाये चले ? कभी भी नहीं चल सकता। इसी से अब मेरा ज्ञानभाव यथार्थ हो गया है और अपने-पराये की पहचान हो गई है। इसलिए अब मुझे ठगने में कौन समर्थ हैं ? अनादिकाल से पर्यायों में बहुत ठगा गया जिसके कारण भव-भव में जन्म-मरण के दुःख सहे अतः अब आप सभी अच्छी तरह जानो—

37. तुम्हारे और मेरे इतने ही दिनों का संयोग/सम्बन्ध था, अब वह पूरा होगया इसलिए आपको भी अब आत्मकार्य करना उचित है, मोह करना उचित नहीं। इसलिए अपना/निज स्वरूप शाश्वत है, उसी को सम्भालो, उसमें किसी प्रकार का खेद नहीं। किसी दूसरे के पास जाना नहीं है। अपने ही घर में महा-अमूल्य खजाना है, उसको सम्हालने से जन्म-जन्म के दुःख नष्ट हो जाते हैं। इस संसार में जितने भी दुःख हैं वे सब स्वयं को नहीं जानने के कारण से हैं। इसलिए एक ज्ञान की ही आराधना करो। ज्ञान-स्वभाव है वही अपना निज स्वरूप है, उसको प्राप्त कर यह जीव अत्यन्त सुखी होता है। उसको प्राप्त न करने से ही दुःखी है। इससे वह प्रत्यक्ष देखने-जाननेवाला, ज्ञायक पुरुष शरीर से अलग अपने शरीर को छोड़कर और किसी बात में प्रीति उत्पन्न करे तो वह ऐसा है जैसे-सोलह स्वर्गों का कल्पवासी देव कौतुहल [ख्याल] के लिए मध्यलोक में आया और किसी एक रंक पुरुष के शरीर में प्रवेश किया तथा रंक जैसी क्रियाएं करने लगा। कभी तो लकड़ी का गट्ठर सिर पर रखकर बाजार में बेचने जाय, कभी अपने को अत्यधिक कोसता हुआ रोये, कभी माता या स्त्री के पास रोटी मांगने लगा। कभी पुत्रादि को लेकर खिलाने लगा और कभी राजा आदि के पास जाकर याचना करता—हे महाराज ! मैं आजीविका न होने से बहुत दुःखी हूं, मेरा प्रतिपालन करो। कभी मजदूरी का पैसा/टका लेकर, हंसिया [घास काटने का औजार] कमर में रखकर (खौंसकर) घास काटने के लिए जाना और कभी रुपये का सामान खोकर [खो दे और] रोने लगा। कैसे रोने लगा ! अरे बाप रे, अब मैं क्या करूंगा, मेरा धन चोर ले गये। मैंने कठिनाईपूर्वक कमा-कमाकर एकत्र किया था, वह आज जाता रहा, अब मैं किस प्रकार जीवन यापन करूंगा ! [यदि] कभी नगर में दुश्मनों का आक्रमण हुआ तब उस पुरुष ने एक लड़के को कंधे पर

पर चढ़ाया और एक लड़के की अंगुली पकड़ ली, स्त्री व पुरुष को आगे कर लिया, एक टोकरी में छाजला, चालनी, हांडी [सब्जी पकाने की], झाड़ू आदि सामग्री भरकर स्त्री के सिर पर रख दी और एक-दो गूदड़े [फटे पुराने कपड़े] गठरी में बांधकर अपने सिर पर रखली और अर्द्धरात्रि को नगर से निकला। पीछे मार्ग में कोई राहगीर/पथिक मिला। उसने पूछा—हे भाई! तुम कहां जा रहे हो? तब वह पुरुष कहने लगा—इस नगर में दुश्मनों की फौज आई है इसलिए हम अपना धन लेकर भाग रहे हैं, अन्य नगर में जाकर अपना गुजर-बसर करेंगे, इत्यादि नाना प्रकार के चरित [नाटक] करता हुआ वह कल्पवासी देव अपने सोलहवें स्वर्ग की विभूति को क्षणमात्र भी नहीं भूलता है। उन विभूतियों का अवलोकन कर सुखी बना भ्रमण करता है। उस रंक पुरुष की पर्याय में होनेवाली नाना प्रकार की अवस्थाओं में [उसे] कभी भी अहंकार ममकार नहीं आते हैं एक सोलहवें स्वर्ग की देवांगना आदि विभूति और स्वयं के [अपने] देवोपनीत स्वरूप में ही आते हैं। वैसे ही मैं सिद्ध-समान आत्मद्रव्य इस पर्याय में नाना प्रकार की चेष्टा करता हुआ अपनी मोक्ष लक्ष्मी को और सिद्ध सदृश स्वरूप को नहीं भूलता हूं तो हे लोगो! मैं किस बात का डर करूं?

38. अब इससे आगे स्त्री से ममत्व छुड़ाता है—हे इस शरीर की स्त्री! तू अब इस शरीर से ममता छोड़। तेरा और शरीर का इतना ही संयोग था, वह अब पूरा हो गया। तेरी आवश्यकता अब इस शरीर से पूरी नहीं होगी। इसलिए तू अब मोह छोड़, बिना मतलब शोक मत कर। अगर तेरे रखने से शरीर रहता है तो रख ले, मैं तुझे मना नहीं करता और यदि तेरे रखने से भी शरीर नहीं रहता तो मैं क्या करूँ? यदि तू विचार करके देखे तो तू भी आत्मा है और मैं भी आत्मा हूं। स्त्री-पुरुष का पर्याय है यह तो पौद्गलिक है, इनसे कैसी प्रीति? ये जड़ और आत्मा चैतन्य। ऊंट-बैल की तरह का जोड़ा। इसलिए यह संयोग किस प्रकार बन सकता है? और तेरा पर्याय भी तू चंचल/अस्थिर ही समझ। इसलिए अपने हित का तिचार क्यों नहीं करती? हे स्त्री! इतने दिन भोग किया उससे क्या सिद्धि होगी? व्यर्थ ही भोगों के कारण आत्मा को संसार में भटकाया। यह बात मृत्यु के समय नहीं जानी कि मरने के बाद तीनों लोकों की सम्पत्ति झूठी है इसलिए मेरी पर्याय बदलने से तुझे दुःख करना उचित नहीं। यदि तू मेरी प्रिय है तो

मुझे धर्म का उपदेश दे। यह तेरी बारी/अवसर है, और यदि तू केवल मतलब/स्वार्थ की ही साथी थी तो तेरी तू जाने। मैं तेरे डिगाये [पथ-भ्रमित करने/विचलित करने से] कौनसा विचलित होऊंगा? मैंने तो तुझ पर दया करके तुझको उपदेश दिया है, माने तो मान अन्यथा तेरा जो होनहार है वह होगा। हमारा तो अब कोई मतलब नहीं। इसलिए मेरे पास से जा और परिणामों/भावों में शान्ति रख; आकुलता मत कर। आकुलता है वही संसार का बीज है। इस तरह स्त्री को समझा कर विदा किया।

39. अब कुटुम्ब-परिवार को बुलाकर समझाता है—अहो कुटुम्ब-परिजन! अब इस शरीर की आयु थोड़ी रही है। अब हमारा परलोक [मृत्यु] नजदीक है। इसलिए अब मैं आप लोगों को कहता हूं कि आप मुझसे किसी बात का राग मत करना। तुम्हारे और मेरे चार दिन [थोड़े समय] का मिलन है, लंबा नहीं। जिस तरह सराय में राहगीर दो रात्रि के लिए मिलता है, रहता है, पीछे बिछुड़ता हुआ दुःख करता हैं। ऐसी दृष्टिपूर्वक सम्पूर्ण ज्ञानपने से मेरा तुमसे क्षमाभाव है। आप सभी आनन्दपूर्वक रहो। अनुक्रम/बारी-बारी से सभी की यही रीति होनी है इसलिए संसार का ऐसा चरित जानमर कौन ऐसा बुद्धिमान् है जो इनसे प्रीति करे।

40. इस तरह कुटुम्ब-परिवार को समझाकर भेजा। अब पुत्रों को बुलाकर समझाता है—अहो पुत्रो! आप सभी सयाने (समझदार) हो। मुझसे किसी प्रकार का मोह मत करना। एक जिनेश्वर देव का धर्म है उसका अच्छी तरह पालन करना। तुमको धर्म ही सुखकारी होगा, माता-पिता सुखकारी नहीं। अगर कोई माता-पिता को सुखकारी मानता है तो यह मोह का माहात्म्य जानो। कोई किसी का कर्ता नहीं, कोई किसी का भोक्ता नहीं। सभी पदार्थ अपने-अपने स्वभाव के कर्ता और भोक्ता है। इसलिए अब मैं तुमसे कहता हूँ कि अगर तुम सभी व्यवहारमात्र से भी मेरी आज्ञा मानते हो तो जो मैं कहता हूँ वही करो। प्रथम तो तुम लोग देव-गुरु-धर्म में प्रगाढ़ प्रतीति (विश्वास) करो, साधर्मी लोगों से मित्रता करो। दान, तप, शील, संयम से अनुराग करो, स्व-पर में भेद-विज्ञान का उपाय करो। संसारी पुरुषों से प्रीति अर्थात् ममता भाव को त्याग दो। सरागी जीवों की संगति से संसार में अनादिकाल से जीव ने महादुःख प्राप्त किये हैं इसलिए सरागी पुरुषों

की संगति अवश्य छोड़ देनी चाहिये और धर्मात्मा पुरुषों की संगति करनी चाहिये। धर्मात्मा पुरुषों की संगति ही इस लोक में और परलोक में अत्यधिक सुख देनेवाली है। इससे इस लोक में तो अत्यधिक निराकुल सुख की प्राप्ति होती है और परलोक में स्वर्ग आदि सुखों को प्राप्त कर मोक्ष में शिवरमणी का भर्तार/स्वामी होता है और निराकुल, इन्द्रियातीत, अनुपम, बाधारहित शाश्वत अविनाशी सुख को भोगता है। इसलिए हे पुत्रों! यदि तुम्हें मेरे वचन सत्य दिखाई देते हैं, इसमें तुम्हारा भला होता दिखाई देता हैं तो मेरे वचन अंगीकार (ग्रहण) करो और यदि तुम्हे मेरे वचन झूंठे दिखाई देते हों इनमें तुम्हारा भला दिखाई नहीं देता हो तो मेरे वचन अंगीकार मत करो। मेरा तुमसे किसी बात का प्रयोजन नहीं है, दया-बुद्धि करके तुम्हें उपदेश दिया है मानो तो मानो, नहीं मानो तो तुम्हारी तुम जानो।

41. अब वह सम्यक्दृष्टि पुरुष अपनी आयु का जाना थोड़ा ही समझते हैं तब दान-पुण्य जो भी करना होता है वह अपने हाथों से करते हैं। फिर जितने लोगों से बात करनी होती है उनसे बात करके शल्य-रहित होते हैं। फिर सभी कर्म के नाते के/सम्बन्ध के जो पुरुष-स्त्री हैं उनको अपने पास से हटाकर धर्म से नाता/सम्बन्ध रखनेवाले जितने लोग हैं उनको बुलाकर अपने पास रखते हैं। अपनी आयु नियम से पूरी हुई जानते हैं, इसलिए सभी प्रकार के परिग्रह का जीवन-पर्यन्त त्याग करते हैं और चारों प्रकार के आहार का जीवन-पर्यन्त त्याग करते हैं। सब परिग्रहों का भार पुत्रों को देते हैं। स्वयं विशेषरूप से शल्यरहित या वीतरागी होते हैं। और [यदि कोई] अपनी आयु का नियम नहीं जानता, आयु पूरी होनेवाली हैं या नहीं होनेवाली हैं ऐसा सन्देह रखता हैं तब दो चार घड़ी आदि समय [थोड़े समय] की मर्यादा करके त्याग करता है, जीवन-पर्यन्त का त्याग नहीं करता। फिर पलंग पर से उतर कर भूमि पर सिंह की तरह निर्भय होता हुआ बैठ जाता हैं जिस प्रकार शत्रु को जीतने के लिये योद्धा तत्पर होता है वैसे ही तत्पर होता है। तृण-भूमि पर रहता हुआ किसी प्रकार की जरासी भी आकुलता उत्पन्न नहीं करता है।

पुनः कैसा हैं वह शुद्धोपयोगी, सम्यक्दृष्टि जिसके मोक्ष-लक्ष्मी के साथ वरण की इच्छा हैं [उसके] ऐसा अनुराग हैं कि अभी ही मोक्ष में जाकर वरण करूं। उसके हृदय में मोक्ष-लक्ष्मी का आकार उत्कीर्ण है।

उसकी प्राप्ति [वह] शीघ्र चाहता हैं और उसी के भय से राग-परिणति का प्रवेश नहीं होने देता और इस प्रकार विचार करता है—कदाचित् मेरे स्वभाव में राग-परिणति ने आकर प्रवेश किया तो जो मोक्ष-लक्ष्मी मुझे वरण करने को सम्मुख हुई है वह वापस हो जायगी इसलिए मैं राग-परिणति को दूर तक छोड़ता हूँ। इस प्रकार विचार करता हुआ समय व्यतीत करता है। उसके परिणामों में निराकुल-आनन्द रस बरसता है। वे शान्तरस से अत्यधिक तृप्त हैं। उनके आत्मिक सुख के सिवा किसी बात की इच्छा नहीं। एक इन्द्रियातीत, अभुक्त सुख की इच्छा है, उसी को भोगते हैं। ऐसा स्वाधीन ही सुखी है। यद्यपि साधर्मी का संयोग है तब भी उसका संयोग पराधीन, आकुलता-सहित लगता है। ऐसा समझता हैं—निश्चय से विचारते हुए ये भी सुख के कारण नहीं हैं। सुख का कारण एक मेरा शुद्धोपयोग हैं जो मेरे पास है, इसलिए स्वाधीन है। ऐसे आनन्दमयी रहे तो वह शान्त-परिणामों से युक्त समाधिमरण करता हैं। फिर समाधिमरण के फल से इन्द्रादि की विभूति को प्राप्त करता है। वहाँ से चयकर दूसरे जन्म में राजा-धिराज होता है। फिर कितने ही समय तक राज-विभूति को भोगकर आर्हंती दीक्षा धारण करता है। क्षपक-श्रेणी चढ़कर चारों घातिया कर्मों का नाश करके केवलज्ञान-लक्ष्मी को प्राप्त करता है। वह केवल ज्ञान-लक्ष्मी कैसी है?—उसमें समस्त लोकालोक के चराचर पदार्थ तीनकाल सम्बन्धी एक समय में झलकते हैं। उस सुख की महिमा का वर्णन वचन अगोचर है, वचन द्वारा संभव नहीं है।

—०: :०—

शब्दार्थिका

अँजुली [अंजली]—दोनों खुली हथेलियों के जोड़ने से बना कटोरे जैसा आकार।
अडोल–स्थिर।
अतेंद्री–अतीन्द्रिय, इन्द्रियातीत।
अनुस्वार–अनुसार।
अनंत–अन्यत्र, दूसरी जगह।
अबार–अभी, इसी समय।
अभोगत–अभुक्त, नया।
अमोलिक–अमूल्य, बहुमूल्य।
अर–अरु, और।
अर्थि–लिए, वास्ते।
अवगाहा शक्ति–संकोच-विस्तार की शक्ति।
असा–ऐसा।
अंस–लेश, थोड़ा भाग।
अंकंप–अकम्प, कम्पन रहित।
आगां नै पेंड तीन धरता हूवा—तीन कदम पीछे हट गया।
आणि–आकर।
आपैं–अपने आप, स्वयं।
आराद्धि स्यौं–आराधना करूंगा।
आवर्ण रहत–आवरण रहित।
आंसीरै–भरोसा, सहारा।
आंनि प्राप्त भई है–चढ़ आई है।
इ [इं]–इस।
इन्द्र ही घडूक्यो–बादल ही गरजा।
इलाज–प्रयत्न, युक्ति।
उठि आवै–चला आवे।
उत्कष्ट–उत्कृष्ट, अधिक उत्तम, बड़ा।
उद्यैम–उद्यम।
उपार्यं सूं–उपार्जित करूंगा, प्राप्त करूंगा।
उपरांत–अतिरिक्त, छोड़कर।
ऊंठा सूं–वहां से।
एकठा–एकत्र।
औटी–वापिस।
औतार–अवतार, जन्म।
कठै–कहां।
कडि–कमर।
कदापि–कदाचित्, कभी भी।
कदे–कभी।
कधां [कद]–कब, किस समय।
कसवोय–खुशबू, सुगन्ध।
कसैं–कैसे।
काल–मृत्यु।
काल पूरौ करस्यूं–जीवन-यापन करूंगा, समय बिताऊंगा, ऊमर बिताऊंगा।
कांई–क्या।
कुणी [कुण] का–किस का।

कुमाय-कुमाए-कमा-कमा कर, उपार्जित करके ।
कैंताएक-थोड़ा ही ।
कोस-बुरा-भला कहकर, छीना-झपटी करके ।
कौं भी-कुछ भी, थोड़ा भी ।
क्यां नैं-क्यों, किस कारण से ।
क्यौं-कुछ ।
क्यौं भी-कुछ भी ।
खसोली-लपेट कर, खिसका कर ।
खांवंद-पति ।
खिण-क्षण ।
खोवणां-खोना, नष्ट करना ।
गरज-आवश्यकता ।
गलै-गलता है, नष्ट होता है, क्षीण होता है ।
गुंदरान-गुजर-बसर ।
गूदड़ा-फटे-पुराने कपड़ों से सिना हुआ ओड़ने बिछाने का वस्त्र ।
ग्रासीभूत करना-खा लेना, नष्ट करना ।
ग्राहाक-ग्राही, ग्रहण करनेवाला, खरीददार ।
घणां-बहुत से, अनेक ।
घणौ-बहुत ।
घेणौं-अधिक ।
चलायौ चलै-कहना माने, कहे अनुसार कार्य करे ।
चलावा नैं-चलायमान करने के लिए ।
चालनी-आटा या अनाज छानने का पात्र विशेष ।
चोघता ही रहै-देखते ही रहें ।
छाजलो-सूप, फटक कर अनाज साफ करने का लोहे अथवा तिनके का एक पात्र ।
छाबड़ी-टोकरी, डलिया ।
छीजौ-कम हो ।
छोछा-केवल, सिर्फ, मात्र, खाली ।
जडामूल तैं-पूर्णरूप से, पूरी तरह ।
जता-जितने, जितना ।
जाति-भांति, प्रकार ।
जावक-जानेवाली ।
जाव जीव-यावज्जीवन, जीवन पर्यन्त ।
जांमण-जन्म ।
जुलक-जुलक [झुलक-झुलक]-आंसू बहाते हुए ।
जेताइक-जितने भी ।
जेतेक-जितने भी ।
जेतैं-इसलिए ।
जोर-वश, दबाव ।
टकौ-आधा आना, पुराने दो पैसे । आज के पांच पैसे बराबर ।
टोटा-हानि, नुकसान ।
ठीकता-पहिचान ।
डली-टुकड़ा ।
ढील-देरी ।
तमासगीर-तमाशा देखनेवाला
तलै-नीचे ।
ता तैं-इससे, इसलिए
तिष्टापन करस्यूं-ठहरूंगा, रहूंगा ।
तुच्छ-थोड़ी ।
त्रिक-तीन लोक ।
थिति-स्थिति ।

दरेग–दुःख, शोक, गम ।
दाँतलो–हंसिया, घास काटने का एक औजार ।
दीन–दिन ।
देवपुनीत–देवोपनीत, देवपर्याय में प्राप्त ।
धात–धातु ।
नता–नाता, संबंध ।
नखां–पास ।
नखै–से, पास ।
नंसंदेह–निःसंदेह ।
नाय–नहीं ।
नांई–भांति, तरह ।
निकस्या–निकला ।
निकां नीका–अच्छी तरह से ।
निठ-निठ–कठिनाई से, परिश्रम से ।
निपजाया–उत्पन्न किया ।
निरोपम्य–उपमारहित ।
निर्मापिये है–निर्मित किया जाता है ।
निर्मापै–निर्माण करे ।
निर्म्माप्या–निर्माण किया ।
नियमकरि–निश्चयपूर्वक ।
निस्यल्य–शल्यरहित ।
नीहार–मलमूत्र-त्याग ।
नीके–अच्छी तरह, भली प्रकार ।
नेम–नियम ।
न्यारा न्यारा–पृथक्-पृथक्, भिन्न-भिन्न ।
पण्णि–लेकिन ।
पर्णे–रूप से ।
परगट गांन–प्रकट ज्ञान ।
परणमावे–परिणमन कराता है ।
परणवै–परिणमै, बदले ।
परणवै है–परिणमन करता है ।
परणामां–भावां, परिणामों ।
परतख्य–प्रत्यक्ष ।
परलै नैं–प्रलय को, नाश को ।
पर्म–परम ।
पावजे है–प्राप्त होता है, मिलता है ।
पांणी–पानी, जल ।
पोरोजन–प्रयोजन ।
पुरै–पूर्ण होता है, बनता है, उत्पन्न होता है ।
पैठौ–प्रवेश किया ।
पैंडै–डग, पद ।
पैंड–कदम, डग ।
पैला–दूसरा ।
पौट–गांठ, गठरी, पोटली ।
फूस–घास ।
फेर–परिवर्त्तन ।
बतलाय–बात कर ।
बतलावणो–बात करना ।
बलवा दे–जलने दे ।
बिरिया–बारी, समय ।
बुहारी–झाड़ू ।
भरम–भ्रम ।
भोलै बीसरी–भूले-चूके ।
भांजड़ पड़ी–दुश्मन का आक्रमण हुआ ।
भा ै है–भागता है ।
भि–भी ।
भींजौ–टूटो, टुकड़े टुकड़े हो, भग्न हो ।
भेला–एकत्र, इकट्ठा ।
म–मैं ।
मजूरी–मजदूरी ।

मनिख–मनुष्य ।
महात्म–प्रभाव ।
मांटी–मिट्टी ।
मांथै–मस्तक, सिर ।
मुतलब–प्रयोजन, संबंध ।
मुरदार–अजीव ।
मुलाभै–कारण ।
मुंहडो–मुंह, मुख ।
मूवा–मृत, मरा हुवा ।
मोहक्रम–मोहनीय कर्म ।
मूनैं–मुझको ।
मौसर–अवसर ।
याह–यह ।
या कूं बहुत झूरै है–इसके वियोग में बहुत रोता है ।
रहसी–रहेंगे ।
राखिजे–बचाइए, रक्षा कीजिए ।
राख्या–रखना ।
राडि–लड़ाई ।
रांधिबा की–भोजन पकाने की ।
रूपामय–चांदी का ।
रोबा लागौ–रोने लगा ।
लागिसी–लगेगा ।
लागू–शत्रु, वैरी ।
लूण–नमक ।
वटाऊ–यात्री, पथिक ।
वधवारी–वृद्धि ।
वरजूं–मना करूं ।
वरवा नैं–वरण करने को ।
वलि जाय–टूट जाय, जल जाय ।
वस्त–वस्तु, जिसका अस्तित्व हो ।
वहुरि–फिर, आगे, ननु, प्रश्न, यदि ऐसा प्रश्न करो कि ।
वाल्या चाहै–जलाया चाहे ।
विचक्षण–चतुर, समझदार ।
विचार करता तिष्ठै है–विचारता रहता है ।
विधमांन–विद्यमान ।
विराणी–दूसरे की ।
विलै गया–नष्ट होगया, विलीन हो गया ।
विलै जाबा लाग्या–नष्ट होने लगा ।
विषै–मध्य, में ।
वीसरै है–भूलता है ।
वेदूं–जानूं हूं, जानता हूं ।
व्यापि व्यापक–व्याप्यव्यापक ।
व्यापै–व्याप्त हो, अनुभव हो ।
सकति–शक्ति, ताकत ।
सकर्र–शर्करा, शक्कर, चीनी ।
सगी–साथी ।
सत्री नखां–स्त्री से ।
सधौ है–सधता है, सिद्ध होता है, पूरा होता है ।
सब जिन को–सब लोगों को ।
समाजिन के लोको–कुटम्बियो, समाज के लोगो ।
समाहि गया है–मिल गया है, प्रवेश कर गया है ।
सरणी नहीं–पूरी नहीं होगी ।
सरणों–बनना, सफल होना ।
सहार्‌या–संभाला, सहन किया, सहा ।
संच्या हूंवा–संचित किया हुआ, एकत्र ।
सारिखौ–जैसा ।
सासता–शाश्वत ।

सांचा–ठप्पा, ढालने का यंत्र ।
सिताबी–झटपट, शीघ्र ।
सिंघ–सिंह ।
सीख देइ–हटाकर, भेज कर ।
सुदार–सुधार ।
सुवर्णरूपामई–सोनेचांदी के ।
सूरिज–सूर्य
सो–ये ।
सोग–शोक ।
सो उठता पहिली उठै–(शत्रु के)
सावधान होने से पहले
सावधान हो ।
स्यांणा–बुद्धिमान्, समझदार ।
हस्ती–हाथी ।
हाँडी–मिट्टी की छोटी मटकी ।
हूं–मैं ।

तवयरणं वयधरणं,
संजमसरणं च जीवदयाकरणम् ।
अंते समाहिमरणं,
चउविह दुक्खं णिवारेइ ॥

अर्थ—तपश्चरण करने, व्रतधारण करने, संयम की शरण लेने, जीवदया करने और अन्त में समाधिपूर्वक मरने से चारों प्रकार के दुःखों का निवारण होता है ।